शुभाशीष

विश्व कल्याणकारी परमपिता परमात्मा शिव तथा आदिदेव प्रजापिता ब्रह्मा की सबल प्रेरणा से प्रारंभ हुई 'ज्ञानामृत' मासिक पत्रिका अपनी सेवा-यात्रा के 44 वर्ष पूरे कर चुकी है। यह अति हर्ष का विषय है कि ईश्वरीय ज्ञान को सरल, सहज तथा अनुभवयुक्त तरीके से प्रस्तुत करने वाली इस पत्रिका की माँग देश-विदेश में दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

घर-घर, गली-गली में ज्ञान-प्रकाश फैलाने वाली, मन को खुशी और शक्ति से भरपूर करने वाली, नई-नई अनुभूतियाँ कराने वाली इस पत्रिका को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य आप सभी राजयोगी भाई-बहनें अथक होकर करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे – यह मेरी शुभकामना है। श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ व्यवहार और श्रेष्ठ आचार की ओर प्रेरित करने, निराश में उमंग-उत्साह भरने, उलझनें समाप्त कर जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए यह पत्रिका अति उत्तम आधार है।

जो भाई-बहनें नवीन मनन-चिन्तन कर ज्ञान के लेख भेजते हैं, जो इसके रूप को निखारते हैं, जो इसे जन-जन तक पहुँचाते हैं और

साथ-साथ जो इसे पढ़कर पुरुषार्थ की उड़ती कला की ओर जाते हैं उन सबको मैं बधाई देती हूँ और आशा करती हूँ कि गाँव-शहर, गली-मोहल्ले तथा हर व्यक्ति तक इसे पहुँचाकर आप उन्हें ईश्वर पिता के समीप आने के लिए प्रोत्साहित करते रहेंगे क्योंकि ज्ञान-दान महापुण्य है।

सन् 2009-2010 हेतु ज्ञानामृत के ज्ञान-हंसों को मैं यही कहूँगी कि बापदादा तथा ब्रह्मावत्सों की प्यारी इस पत्रिका के माध्यम से सबको मुक्तिधाम और जीवन्मुक्तिधाम का साक्षात्कार कराते हुए बापदादा का नाम बाला करें तथा 'बहुत काल, एवररेडी तथा अचानक' इस तीन शब्दों की स्मृति द्वारा स्वयं को उड़ती कला की ओर ले जाएँ।

इसी शुभकामना के साथ,

बी.के. जानकी

अमृत-सूची

- बेहद की वैराग्य वृत्ति *(सम्पादकीय)*..... 2
- मुझे तुझ पर नाज़ है *(कविता)*..... 4
- कमाल है ब्रह्मा बाबा की..... 5
- पुरुषोत्तम संगमयुग एवं..... 6
- 'पत्र' संपादक के नाम..... 9
- तलाश जो पूरी हो गई..... 10
- तीन प्रकार के बच्चे.....12
- जीभ प्रबन्धन..... 13
- प्रजापिता ब्रह्माकुमारी..... 16
- व्यसन - मौत की शहज़ादी ...17
- आत्मा को उजला करने.....20
- जब वज्रपात निष्क्रिय हो गया. 21
- संगठन की दुश्मन : ईर्ष्या.... 22
- निराकारी, निर्विकारी..... 24
- इस तरह मिला मुझे..... 25
- रिश्तों की गरिमा..... 27
- सुख का सच्चा धाम *(कविता)*..... 28
- अमूल्य आभूषण 29
- सचित्र सेवा समाचार..... 30
- आत्म-स्मृति में है समाधान...32

सदस्यता शुल्क

भारत	वार्षिक	आजीवन
ज्ञानामृत	75 /-	1,500/-
वर्ल्ड रिन्युअल	75/-	1,500/-
विदेश		
ज्ञानामृत	700 /-	7,000/-
वर्ल्ड रिन्युअल	700/-	7,000/-

शुल्क केवल '**ज्ञानामृत**' अथवा '**द वर्ल्ड रिन्युअल**' के नाम से ड्राफ्ट या मनीऑर्डर द्वारा भेजने हेतु पता है- संपादक, ओमशान्ति प्रिंटिंग प्रेस, ज्ञानामृत भवन, **शान्तिवन-307510 (आबू रोड) राजस्थान।**

- शुल्क के लिए सम्पर्क करें - 09414006904, 09414154383

सम्पादकीय

बेहद की वैराग्य वृत्ति

वैराग्य दो प्रकार का होता है – हद का और बेहद का। कटु परिस्थिति, असहनीय परिस्थिति को देखकर किसी चीज़ या व्यक्ति से दूरी बना लेने का नाम है हद का वैराग्य, जैसे, बीमारी के कारण व्यक्ति खटाई का त्याग करता है। उसे खटाई से वैराग्य नहीं है पर शरीर की परिस्थिति ऐसी है कि खा ही नहीं सकता। इसे मजबूरीवश किया गया त्याग कहेंगे। ऐसे त्याग की कोई लंबी अवधि नहीं होती। परिस्थिति ठीक होते ही त्याग की अवधि भी पूरी हो जाती है।

समस्याओं से भगोड़ापन

एक व्यक्ति भोजन के नाम पर रोज़ पत्नी से झगड़ता था और धमकी देता था कि भोजन मेरी पसंदानुसार नहीं बनाएगी तो संन्यासी बन जाऊँगा। कई दिन तो पत्नी डरती रही, उसकी अच्छी-बुरी धौंस सहती रही, एक दिन हिम्मत करके बोली, हो जाओ संन्यासी। व्यक्ति के अहम को चोट लगी, एक संन्यासी के आश्रम में जा पहुँचा। अपना मन्तव्य कह सुनाया। संन्यासी ने कहा, ठीक है और साफ-सफाई की सेवा में लगा दिया। दोपहर ढलते-ढलते भूख के मारे प्राण निकलने लगे, बोला, महाराज, आपके लिए भोजन बनाऊँ क्या? संन्यासी ने कहा, मेरा तो आज व्रत है, तुम नीम आदि की पत्तियों से गुज़ारा कर लो, हम तो ऐसे ही करते हैं। व्यक्ति का तो नीम के नाम से ही मुँह कड़वा हो गया, उलटे पैर घर की ओर दौड़ा। घर की परिस्थितिवश वह आश्रम की ओर मुड़ा था पर वहाँ घर से भी बड़ी परिस्थिति देख फिर घर की ओर मुड़ गया। ऐसा वैराग्य, वैराग्य है ही नहीं, यह तो समस्याओं से भगोड़ापन है। जैसे पशु को कोई इधर से लाठी मारे तो उधर दौड़ जाता है और उधर से लाठी मारे तो इधर दौड़ आता है, इच्छाओं में बँधा व्यक्ति भी पशु-तुल्य होकर परिस्थितियों के कोड़े खाता रहता है।

राग है गुप्त बीमारी

कुछ लोग हठवश, लोकलाज वश, अहमवश अपने त्याग पर अड़े तो रहते हैं परन्तु मन को न्यारा नहीं कर पाते। एक व्यक्ति को घर-परिवार त्यागे बीस वर्ष हो चुके थे, उसे समाचार सुनाया गया कि आपकी पत्नी का देहान्त हो गया है। उसने सुख की साँस लेते हुए कहा, 'अच्छा हुआ, पीछा छूटा।' स्पष्ट है कि तन से दूरी बना लेने पर भी उसके मन का राग नहीं मिटा था। मन में राग है तो वैराग्य का दिखावा मात्र है। जैसे कई बार बीमारी बाह्य शरीर पर नहीं दिखती पर अंदर में घातक रूप से फैल चुकी होती है। मन का राग भी आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए अन्दर ही अन्दर फैली हुई घातक बीमारी है।

कई बार व्यक्ति को अति प्रिय, प्राण-प्रिय चीज़ से धोखा खाकर लगता है, संसार में कुछ भी विश्वास के लायक नहीं है। राजा भर्तृहरि को प्राण-प्रिय पत्नी से धोखा मिला, दिल टूटा, राज्य से भी वैराग्य आ गया, भगवा कपड़े पहन संन्यासी बन गया। एक बार चाँदनी रात में, जंगल में से गुज़रते समय एक चमकती हुई मणि दिखाई दी, मन आकर्षित हुआ पर यह क्या, उठाने लगा तो पान की पीक से हाथ गंदा हो गया। भर्तृहरि ने अपने मस्तक पर हाथ रख अपने से बात की, अरे भर्तृहरि, तूने भरा खज़ाना ठुकरा दिया पर मणियों से आसक्ति तो अभी तक नहीं छूटी, अभी और कितने धोखे खाने हैं? भर्तृहरि को पत्नी से चोट लगी थी, धन से नहीं। धन की आसक्ति का बीज तो नष्ट नहीं हुआ था सो आकर्षण आ गया।

ज्ञान-बल से मन को मोड़ें

हमें भी चेक करना है कि हमारी वृत्ति किन-किन चीज़ों से पूर्ण उपराम है, किन-किन से अर्धउपराम है और किन-किन में पूरी डूबी पड़ी है। हरेक तपस्वी को ऐसी सूची तैयार करके आत्म अवलोकन कर, अपने को ज्ञान-बल से मोड़ना है। जैसे एक दर्जी ज्ञान के आधार से कपड़े का अनावश्यक भाग काट देता है, उस

काटने में कोई नुकसान नहीं होता, और ही सिलकर कपड़ा सुन्दर और सदुपयोगी हो जाता है परन्तु बिना ज्ञान के कोई यूँ ही कपड़े को काटने लगे तो कपड़े का नाश हो जाता है। इसी प्रकार, ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर, राग पैदा करने वाली बातों को छोड़ने से जीवन सुन्दर और सदुपयोगी बन जाता है परन्तु बिना ज्ञान के, हठ-वश, रीस-वश, धोखे-वश, परिस्थिति-वश यदि हम किनारा करते हैं, त्याग देते हैं, नफरत करते हैं, लापरवाह बनते हैं तो अपने और दूसरों के जीवन का नुकसान होता है।

वैराग्य की मनोभूमि

यादगार शास्त्र रामायण में दिखाते हैं कि भगवान का साथ पाने की इच्छुक सीता रूपी आत्मा ने पिता का राजमहल, ससुर का राजमहल सब ठुकरा दिया और वनवासिनी बन गई। कई वर्षों तक त्याग और वैराग्य का जीवन व्यतीत करने के बाद, एक सोने के हिरन पर ललचा गई और उसे जीवित या मृत – किसी भी रूप में पाने के लिए हठ पर उतर आई। सोने के प्रति राग का बीज कहीं न कहीं छिपा था, जो सुनहरे हिरन की छटा देख अंकुरित हो गया। भगवान ने सोचा, सीता को मुझसे ज़्यादा प्यार अब सोने से हो गया है तो उसे सोने की नगरी में ही भेज दिया जहाँ उसे दुख, तकलीफ, तड़प, विरह और आँसुओं के अलावा कुछ न मिला। त्याग-तपस्या के मार्ग में इस तरह के सुनहरे हिरन अंत तक लुभायमान करते रहेंगे। एकांत में बैठकर आकर्षण की उन सभी संभावित चीज़ों को मन के नेत्र के सामने इमर्ज कीजिए और अपने से पूछिए, मुझे यह मिल जाए तो मैं उसका क्या करूँगा, वो मिल जाए तो उसका मैं क्या करूँगा। चीज़ें मिलने से पहले ही वैराग्य की मनोभूमि बना लेंगे तो फँसने की संभावना अति न्यून हो जायेगी, नहीं तो माया के प्रवेश के लिए एक छोटा-सा छिद्र ही बहुत है।

भगवान कहते हैं – पुरुषार्थ में कोई समस्या रूप बनता है तो उसका कारण है बेहद की वैराग्य वृत्ति में कमी। अब बेहद का वैराग्य चाहिए। बेहद का वैराग्य सदाकाल चलता है। एक तरफ उमंग-उत्साह, खुशी और दूसरी तरफ बेहद का वैराग्य। बेहद का वैराग्य सदा न रहने का कारण है देह-अभिमान। आजकल सेवा द्वारा साधन बढ़ेंगे, आपकी प्रकृति दासी होगी लेकिन बेहद की वैराग्य वृत्ति से साधन और साधना का बैलेन्स रहेगा।

बेहद का वैराग्य ही सच्चा वैराग्य

उपरोक्त सभी उदाहरण हद के वैराग्य या भग्न वैराग्य के थे। अब हम जानेंगे बेहद के वैराग्य को। यह जानकर कि शरीर विनाशी है; मैं आत्मा अजर, अमर, अविनाशी हूँ; शरीर के पदार्थों, प्राप्तियों, उपाधियों, वैभवों, संबंधों और पुराने संस्कारों से अपने को न्यारा कर लेना ही बेहद की वैराग्य वृत्ति है। इसके लिए घर-त्याग, संसार-त्याग की आवश्यकता नहीं है बल्कि इस ज्ञान की आवश्यकता है कि सृष्टि सराय है, असली घर परमधाम है। रंगमंच पर पार्ट पूरा होने पर जिस प्रकार पार्टधारी घर लौट जाता है, ऐसे ही मुझे भी परमधाम घर लौटना है। **जहाँ से आए थे, वहाँ वापस जाने के लिए मन को सहज तैयार कर लेना ही सच्चा वैराग्य है। इसमें कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती या दमन की बात नहीं है। यह तो स्वाभाविक है, खुशी की बात है, यह तो मीठा वैराग्य है। जब यह मान लिया कि दुनिया की मुसाफिरी पूरी कर, अब प्रभु की गोद में समाना ही है तो यह प्रभु की गोद की स्मृति खुशी से भर देती है। जो छोड़ रहे हैं उसका दुख नहीं है पर जो पा रहे हैं उसकी खुशी है। जैसे कोई सोने की अँगूठी देकर, लोहे की ले तो हम सहर्ष तैयार हो जाते हैं, इसी प्रकार चारों ओर से समस्याओं से घिरी इस बूढ़ी सृष्टि के बदले सतयुगी स्वर्णिम दुनिया में जाने की बात सुनकर, जो हर्ष प्राप्त हुआ है, वही बेहद का वैराग्य है।** ऐसे वैराग्य में भोगों से कई गुणा ज़्यादा आनन्द है। ऐसे सच्चे वैरागी शरीर और आत्मा से भरपूर नज़र आते हैं। उनके चेहरे पर लाली, नेत्रों में रूहानियत की चमक, चाल में समय को मुट्ठी में करने का नशा और कर्मों में सुख का झरना बहता है। किसी ने

ठीक ही कहा है –

जो फ़क़ीरी मिज़ाज होते हैं
ठोकर में ताज रखते हैं।
कल की चिन्ता क्यों,
मुट्ठी में आज रखते हैं।

संसार में बसो पर फँसो नहीं

बेहद के वैरागी का कोई अपना नहीं, पर सारा संसार अपना। कहावत है, रागी केवल अपने घर की जानता, वैरागी तो घर-घर की जानता। उसकी वृत्ति एकरस, हलकी और निर्विघ्न होती। पाँचों विकारों पर नृत्य करता हुआ वह प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है। हर जगह एडजस्ट हो जाता, मिलनसार होता, हर परिस्थिति में हर्षित रहता, सदा प्रभु के दिलतख्त पर विराजमान हो सृष्टि-नाटक का साक्षी द्रष्टा, न्यारा और सबका प्यारा बन जाता है।

हम इस दुनिया की चीज़ों को देखते, छूते, उपभोग करते हैं परन्तु प्रभु की अमानत मानकर, ट्रस्टी बनकर, सेवा व परोपकार की भावना से। हम चीज़ों को अपने मन पर हावी नहीं होने देते; भगवान की श्रीमत प्रमाण, मालिक बन उसे सेवा में लगाते हैं और पुनः अपनी साधना में खो जाते हैं। चीज़ मूल्यवान है पर मेरी साधना उससे भी अधिक, अमूल्य है। तुच्छ, नश्वर चीज़ के लिए साधना को नहीं बिगाड़ सकते क्योंकि साधना साथ जायेगी, चीज़ यहीं रह जायेगी।

– ब्रह्माकुमार आत्म प्रकाश

मुझे तुझ पर नाज़ है

ब्रह्माकुमार हेमंत, जलगाँव

तू पवित्र मंदिर है, शिक्षा के नगर की लाज है।
ए मेरे 'मधुबन' मुझे तुझ पर नाज है।।

होती नित ईश्वर-चर्चा वह महफिल है तू
अगर शरीर है 'आबू' तो उसका दिल है तू
कितनों के दिल में बसी है, ना जाने तेरी प्रीत
कितने बिछड़े राही गाते तुझसे मिलने के गीत
मिलन से खुलते जन्मों के राज हैं
ए मेरे मधुबन .....

दिव्य गुणों के पुष्प खिलें जहाँ, वह उपवन है तू
देवत्व की छवि दिखे जिसमें, वह दर्पण है तू
तेरे दामन में पली-बढ़ी कई हस्तियाँ महान
जिनकी महिमा की कसम खाता है झुककर आसमान
तेरे सर पर रखा प्रभु पिता ने रूहानियत का ताज है
ए मेरे मधुबन .....

सबको देता मान तू, ऊँच-नीच का भेद नहीं
तेरे आंगन में झगड़ते कभी 'कुरान' और 'वेद' नहीं
तेरे उज्ज्वल नाम के आगे हर कोई शीश झुकाता है
सच कहता हूँ तुझसे कल्प-कल्प का नाता है
'मेरे बाबा, मेरे बाबा' की गूँजती हर ओर आवाज है
ए मेरे मधुबन .....

कमाल है ब्रह्मा बाबा की तपस्या की!

• दादी जानकी

पुराने संस्कारों का कुछ अंश न रहे, योग इतना पावरफुल हो। इतना सच्चा प्यार भरा संबंध बाबा से हो तो उसी याद की लगन की अग्नि संस्कारों को भस्म कर देती है। बाबा जैसा त्याग और तपस्या हो, सेवाधारी भी बनना है तो ऐसे। जैसे बाबा ने एक स्थान पर बैठे भी सारे विश्व को अच्छी तरह से किरणें दी हैं। कई पुरानी आत्माओं को घर बैठे, किसी भी देश में बैठे साक्षात्कार कराके खींच लिया है, तो कमाल है ब्रह्मा बाबा की तपस्या की। सदा ही बाबा को एक ही लगन में देखा। ऐसे बाबा को देख अनेकों के पुराने कर्मबंधन कट गये और कहने लगे, 'मेरा बाबा..मेरा बाबा'।

अब अन्त का समय आ गया, तो अंत घड़ी का ख्याल करना है, यह बाबा ने सिखाया है। हर आत्मा को, बाबा कैसा है वो अनुभव कराओ, इससे प्राप्ति है। हमारे दिल में, मन में, दृष्टि में और मुख से बाप समान बनने के आसार दिखाई पड़ने लगें। बाबा तो कहते, मेरे से भी ऊँच बनो। बाप से जो सच्चे प्यार का अनुभव है वो इतना शक्तिवान है, जो प्रकृति को भी सुधार करके सतोप्रधान बना देता है क्योंकि परमात्म-शक्ति कम बात नहीं है। जिसके पास खज़ाने हैं वो कभी खाली दिखाई नहीं पड़ेगा। वो अंदर ध्यान रखता है कि कहाँ व्यर्थ न जाये, मैं संपन्नता से साधारणता में न आ जाऊँ। अपने निश्चय में निश्चिन्त रहो तो राजाई है। हमारे पास निश्चय का बल ऐसा हो जिससे सारे विश्व को परिवर्तन होने में शक्ति मिले।

बाबा कहते, तुम्हारे चेहरे पर रूहानियत और रमणीकता हो। सदा हमारे नसीब में खुशी तब है जब मेरे से सब खुश हैं, नसीबवान वो जो खुद संतुष्ट हो, उनसे सब संतुष्ट हों। बाबा कहते हैं, ज्ञान का, गुणों का, शक्तियों का और समय का भी बड़ा खज़ाना है। इसको जितना सफल करेंगे, उतना सफलतास्वरूप बनते जायेंगे। **जब सफल करना ही है तो सोचने की बात ही नहीं है। करना, कहना, सोचना बराबर हो। जब करना ही है तो पूछना किससे? क्या करें? यह सोचना व्यर्थ है। बाबा कहते, अब इस व्यर्थ को छोड़ो, सोचने को छोड़ो, कहने तक नहीं आवे। जिसको सफल करने का अक्ल है वो राजाओं का राजा बन सकता है। और कुछ सेवा न कर सको तो सफल करो और कराओ। किसी से कुछ माँगो नहीं, नेवर।**

हम अनुभव से कहते हैं कि जब हमारे अंदर स्वच्छता, सच्चाई, श्रेष्ठता होगी तब बाबा की कमाल अनुभव होगी। कई बाबा के बच्चे चलते आ रहे हैं पर स्पीड बड़ी स्लो है

क्योंकि उनके रास्ते में रुकावटें आई हैं या औरों ने रोक लिया है इसलिए उन्हें आगे बढ़ने में लेट हो रहा है। तो इस मार्ग में अपना रास्ता भी क्लीयर हो और मेरे आगे बढ़ने में औरों को कोई तकलीफ न हो। इधर है मोहब्बत, उधर है ज़माना.. तो किधर चलें? जहाँ मेरा साजन (परमात्मा) चले। हम बाबा के साथ-साथ चलें। कोई साथ नहीं चले हैं तो अब दौड़ी पहनें क्योंकि मंज़िल दूर है, टाइम थोड़ा है इसलिए दौड़ने के बिगर पहुँचेंगे कैसे? इसके लिए सेकंड में पास्ट इज़ पास्ट करके हलके हो जाओ तो दौड़ सकेंगे। जिसको एक बार दौड़ने की प्रैक्टिस हो गई, वो ऐसे ही इधर-उधर अपना टाइम वेस्ट करता हुआ दिखाई नहीं देगा। थोड़ी भी सुस्ती ज्ञान मार्ग की वैरी है। सुस्ती को एवाइड करना है, उसका नाम-निशान न रहे तब हमारे में नवीनता आयेगी।

❖

पुरुषोत्तम संगमयुग एवं भाषा के द्वारा एकता का प्रयोग

• ब्रह्माकुमार रमेश शाह, गामदेवी (मुंबई)

सतयुगी दैवी सृष्टि में राज्य, धर्म, भाषा, वर्ग, मुद्रा, संस्कृति आदि सब में एकता थी। इसलिए उस स्वर्गिक सृष्टि में अटल-अखण्ड, निर्विघ्न सुख-शान्ति सम्पन्न राज्य आधा कल्प अर्थात् 2500 वर्ष तक चलता रहा। एकता रूपी दैवी गुण की विस्मृति से अनेकता आई, परिणामस्वरूप 'मैं' और 'मेरा' दो शब्दों का समाज में जन्म हुआ जिससे समाज में दुख-अशान्ति आई और उससे मुक्त होने के लिए अनेक प्रकार के प्रयोग हुए। अनेक देशों और सभ्यताओं में विभाजित सृष्टि को एकता में लाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना हुई परन्तु परिणाम को देखा जाये तो विश्व में अनेकता बढ़ती ही जाती है।

विश्व में अनेक भाषाओं के द्वारा भी अनेक प्रकार की समस्यायें पैदा हुई हैं। भारत जब स्वतन्त्र हुआ तब भारत में केवल 3 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी भाषा जानते थे, फिर भी देश में एकता स्थापित करने के लिए देश के कारोबार में अंग्रेज़ी भाषा को निमित्त बनाया गया। हिन्दी बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक थी, फिर भी हिन्दी भाषा के लिए सबके मन में पूर्ण रूप से सम्मान जाग्रत नहीं किया जा सका उदाहरणार्थ, अभी भी एक राज्य में ट्रस्ट का बैंक खाता खोलने के लिए हमने भारत सरकार के द्वारा हिन्दी में दिये गये दो प्रमाण-पत्र भेजे परन्तु बैंक वालों ने उनको वापस करके कहा कि हमें उनका भाषान्तर अंग्रेज़ी में करके भेजें, तो हम स्वीकार करेंगे।

संगमयुग में, भारत देश में हिन्दी भाषा एकता लाने में इतनी सफल नहीं हुई है, उसके अनेक कारणों में एक कारण यह है कि हिन्दी भाषा की उपयोगिता बढ़ाने के लिए अन्य भाषाओं में प्रचलित शब्दों को अपनाने के स्थान पर नये शब्दों का अविष्कार किया गया, जिनका प्रयोग जन-साधारण के लिए कठिन ही नहीं किन्तु अस्वीकार्य जैसा हो गया। जैसे कि रेलगाड़ी को हिन्दी में 'लोहपथगामिनी' और रेलवे स्टेशन को 'अग्निरथ विराम स्थल' नाम से सम्बोधित किया गया, जो जन-साधारण ने स्वीकार नहीं किया परन्तु फिर भी केन्द्र सरकार ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाया।

शिवबाबा ने भाषा के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर बात कही है। बाबा ने कहा है, भाषा तो माध्यम है विचारों को प्रगट करने और विचारों का आदान-प्रदान करने का। भाषा साधन मात्र है, साध्य नहीं। साध्य है समाज-कल्याण और सर्वोन्नति। परन्तु कई बार साधन और साध्य के भेद का विवेक खो देने से साधन को ही साध्य समझ लिया जाता है, जिसके कारण अनेक समस्यायें पैदा हो जाती हैं। ब्रह्मा बाबा में साधन और साध्य का विवेक बहुत स्पष्ट था, जिसके विषय में एक उदाहरण यहाँ देते हैं। एक बार आदरणीया दादी निर्मलशान्ता ने कोलकाता से प्यारे ब्रह्मा बाबा को पत्र लिखा कि यहाँ के समाज में मान्यता प्रचलित है कि सौभाग्यवती स्त्री को पति की दीर्घायु के लिए मछली खाना अनिवार्य है, नहीं तो उसकी सास, ननद आदि उस पर अत्याचार करते हैं तो ऐसी परिस्थिति में उन मछली खाने वाली माताओं को हम क्लास में आने की स्वीकृति कैसे दें? ब्रह्मा बाबा ने यह प्रश्न मेरे से पूछा तो मैंने कहा, खानपान की शुद्धि तो ब्राह्मण जीवन का अति आवश्यक नियम है। तब ब्रह्मा बाबा ने हँसते हुए कहा कि ये मातायें स्वेच्छा से मछली नहीं खाती हैं परन्तु यह उनकी मजबूरी है। ज्ञान का मूल सिद्धान्त तो बाबा को याद करना और ब्रह्मचर्य की धारणा करना है। यदि वे मछली खाकर भी पवित्र रहती हैं और शिवबाबा को याद करती हैं तो हम उनको शिवबाबा के बच्चे के रूप

में स्वीकार क्यों नहीं कर सकते हैं? इन्हें मछली खाने के कारण कुछ कम अंक मिलेंगे परन्तु ब्राह्मण जीवन के अन्य नियम-संयम पालन करने के कारण तो अच्छे अंक अवश्य मिलेंगे। इस बात को समझते हुए भी हमको यह नहीं भूलना चाहिए कि ब्राह्मण जीवन का लक्ष्य तो शुद्ध अन्न ही है। ऐसा नहीं कि इसको ढाल बनाकर अन्य लोग भी मछली खाना आरम्भ कर दें। ऐसा ब्रह्मा बाबा ने समझाया।

इस प्रकार यज्ञ के कारोबार में भी गम्भीरता से सोचना पड़ता है कि ऐसा निर्णय करें, जिससे यज्ञ की एकता कायम रहे, उदाहरणार्थ, भारत में हम सबने मेगा प्रोग्राम अक्टूबर की 3 और 4 तिथियों में करने का निश्चित किया और लक्ष्य रखा कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी स्थानों पर यह प्रोग्राम इन्हीं तिथियों में किया जाये और उसका नाम रखा `Global Festival for Receiving God's Powers and Blessings' परन्तु विदेश में अक्टूबर की 3-4 की तिथियाँ सुविधाजनक नहीं लगीं क्योंकि उन्हीं दिनों ज्ञान सरोवर में पीस ऑफ माइण्ड रिट्रीट का निर्णय पहले से हो गया है, इसलिए विदेश के सभी भाई-बहनें उस समय भारत में होंगे। ऐसी स्थिति को देखते हुए विदेश के भाई-बहनों ने विदेश में यह प्रोग्राम 20 सितम्बर को करने का निर्णय किया और उसका नाम रखा `Experiencing Inner Power and Protection'. तिथियों और विषय भेद की बात के लिए आदरणीया जानकी दादी जी से पूछा गया तो उन्होंने उसे स्वीकृति दे दी क्योंकि सेवा के नाम पर एकता होनी ही चाहिए, उसमें मतभेद नहीं होना चाहिए।

यूरोप महाद्वीप में अनेक देश हैं, जिनकी अपनी-अपनी भाषा, संस्कृति, मुद्रायें आदि हैं। अनेकता के कारण प्रथम और द्वितीय विश्व-युद्ध का केन्द्र-बिन्दु यूरोप ही बना। अब फिर से वहाँ की धरती पर कोई तीसरा विश्व-युद्ध न हो और वहाँ अमन-चैन रहे इसलिए उन्होंने वहाँ के सभी राष्ट्रों का एक संगठन बनाया है जिसका नाम रखा है 'यूरोपीय कमीशन'। इस संगठन ने पहले तो मुद्राओं में व्याप्त भिन्नता को दूर करने के लिए 'यूरो डॉलर' नाम से एक मुद्रा चलाई। अब उन्होंने भाषा की एकता के लिए भी इंग्लैण्ड की सरकार के साथ विचार-विमर्श करके एक नई अंग्रेज़ी भाषा अपनाई और उसका नाम रखा 'यूरो-अंग्रेज़ी'। भारत स्वतन्त्र हुआ तब भारत- सरकार को सुझाव दिया गया था कि भले ही भारत में अनेक राज्य और भाषायें हैं परन्तु भारत की सभी भाषाओं की लिपि संस्कृत की देवनागरी रहे परन्तु वह विचार मान्य नहीं हुआ। शिवबाबा ने इसी क्षेत्र में कितना क्रान्तिकारी कदम उठाया कि भले ही इस विश्व विद्यालय की स्थापना सिन्ध में हुई परन्तु विद्यालय की मुख्य भाषा सिन्धी नहीं रखी बल्कि बाबा ने व्यवहार करने के लिए हिन्दी भाषा को ही अपनाया और सबको कहा, जो सिन्धी में बोलेगा, उसे पापड़ खाने को नहीं मिलेगा। इस प्रकार शिवबाबा ने हिन्दी भाषा को अपनी भाषा बनाकर सारे यज्ञ में एकता का प्रयोग किया, जो पूर्ण रूपेण सफल रहा है। विदेश के भाई-बहनें भी बाबा की अपनाई इस हिन्दी भाषा में पूर्ण रुचि और श्रद्धा रखते हैं और सीखकर व्यवहार में लाते हैं।

अंग्रेज़ी भाषा और जर्मन भाषा को एकीकृत करने के लिए यूरोपीय कमीशन ने कुछ शब्दों की लिपि को उनके उच्चारण के अनुसार लिखने का निश्चित किया है। उसके अनुसार अब यूरो भाषा में C की जगह S होगा अर्थात् civil शब्द का नया रूप sivil होगा, ऐसे ही कहीं पर C के स्थान पर K अक्षर को लिखा जायेगा, जिसके परिणाम स्वरूप clear को नये रूप में klear लिखा जायेगा और confusion को konfusion लिखा जायेगा।

ऐसे ही दूसरे वर्ष में कुछ शब्दों का परिवर्तन करेंगे। जैसे PH के स्थान पर F अक्षर को लेंगे, जिसके फलस्वरूप photograph को दो साल बाद fotograf लिखा जायेगा। ऐसे ही तीसरे साल में और परिवर्तन करेंगे। जैसे CC को निकाल कर K करेंगे। जैसे accurate की जगह

akurate हो जायेगा। फिर चौथे वर्ष में TH के स्थान पर Z आ जायेगा और W के स्थान पर V आ जायेगा। पाँचवें वर्ष में और परिवर्तन होंगे। फिर पाँच वर्ष के बाद यूरो अंग्रेज़ी भाषा क्या होगी, उसका एक उदाहरण नीचे लिख रहे हैं।

वर्तमान अंग्रेज़ी में There will be no more trouble or difficulties and everyone will find it easy to understand each other. यूरो अंग्रेजी भाषा में Zer vil be nomor trubl or difikultis and evrivun vil find it ezi tu understand ech oza.

अंग्रेज़ी भाषा में परिवर्तन करने वाले इंग्लैण्ड के राजनेतायें और अंग्रेज़ी के विद्वान सहमत हो गये हैं ताकि भाषा के कारण यूरोप में एकता हो। इससे यह सीखने को मिलता है कि परिवर्तन को लोकमान्य बनाने के लिए कई बातों में परिवर्तन करना होता है। व्याकरण में जो नियम बनाये गये हैं, वे भाषा के सुचारु रूप से प्रयोग के लिए बनाये गये हैं। अगर यह सिद्धान्त बुद्धि में नहीं रहा तो वह भाषा जन-मानस से लुप्त हो जाती है और लोग, जो भाषा अधिक सुविधाजनक है, उसे स्वीकार कर लेते हैं।

हिन्दी के विद्वान पण्डितों ने परिवर्तन की चुनौती को स्वीकार नहीं किया और व्याकरण की जड़ता के कारण हिन्दी भाषा को स्वतन्त्र भारत की व्यवहारिक राष्ट्र-भाषा नहीं बना सके। शिवबाबा ने अपनी भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया, जिससे यज्ञ का हर बच्चा भले वह किसी प्रान्त या देश का हो, उसे अपनी भाषा समझता है। जैसे बाबा बोलते हैं, सुनन्ती, कथन्ती, सुनावन्ती अहो मम् माया भागन्ती। इन्हें सुन उड़िया भाषा भाषी भाई-बहनें कहते हैं कि शिवबाबा ने हमारी उड़िया भाषा को स्वीकार किया। आदरणीया गुलज़ार दादी जी के नाम का गुलज़ार शब्द परशियन भाषा का है। इस प्रकार का परिवर्तन भारत के हिन्दी भाषा के विद्वान नहीं कर सके। सन् 1954 में तत्कालीन प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने हिन्दी को सुदृढ़ बनाने के लिए हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना का उद्देश्य बताया और उसका केन्द्र-स्थान कहाँ बने, उसका निर्णय करने को कहा। तब से अर्थात् 1954 से 1998 तक हिन्दी भाषा के विद्वान सोचते रहे कि कानपुर, लखनऊ, देहली आदि-आदि में कहाँ की हिन्दी शुद्ध है, यह विचार करने में 44 वर्ष बीत गये। इस कारण हिन्दी भाषा का बहुत नुकसान हुआ। फिर यह विद्यापीठ वर्धा में बनाया गया।

स्वतन्त्र भारत में भी लोग अपने बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाने में गर्व अनुभव करते हैं। पाण्डव भवन में काम करने वाले एक मज़दूर परिवार ने बताया कि पति की कमाई से घर चलता है और पत्नी की कमाई से बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल में पढ़ाते हैं ताकि बच्चे अंग्रेज़ी पढ़कर भविष्य में अच्छी कमाई कर सकें। मैंने पूछा कि आप हिन्दी भाषा के स्कूल में क्यों नहीं पढ़ाते हो? तो उसने बताया कि अभी हिन्दी कौन पढ़ता है। ऐसी दशा हिन्दी की भारत में है, जो हिन्दी का मूल स्थान है। परन्तु हम गर्व से कहते हैं कि शिवबाबा की भाषा हिन्दी है और विदेश के भाई-बहनों में डिनीस बहन ने हिन्दी भाषा को अच्छी रीति सीखा और दादी जानकी जी के हिन्दी के प्रवचनों का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके अन्य अंग्रेज़ी भाषी भाई-बहनों को सहयोग करती हैं।

हमको शिवबाबा ने बताया है कि भाषा और संस्कृति आदि में एकता लाने के लिए विचारों में विशालता रखनी होती है। जब तक सबके दिलों में यह विशालता नहीं होगी, तब तक शिवबाबा का यह प्रयोग कि इस धरा पर एक राज्य, एक भाषा, एकमत हो, वह सफल नहीं हो सकता है। शिवबाबा अनेक प्रकार के ऐसे प्रयोग हम बच्चों को निमित्त बनाकर कर रहे हैं और इस धरा पर आध्यात्मिक क्रान्ति ला रहे हैं। इस आध्यात्मिक क्रान्ति में निमित्त बनने का हमको सौभाग्य मिला है और हम सब मानते हैं कि हम कोटों में कोई, कोई में भी कोई हैं। ये ही एकता के संस्कार हम सतयुग में ले जायेंगे और वहाँ एकमत होकर रहेंगे और एक ही भाषा बोलेंगे। शिवबाबा के इसी कर्त्तव्य के कारण हम सब कहते हैं, 'वाह हमारा बाबा और वाह हमारा भाग्य।' ❖

'पत्र' संपादक के नाम

ज्ञानामृत के जून, 08 के अंक में 'परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिवान हैं, सर्वव्यापी नहीं, वे परमधाम निवासी हैं' को पढ़कर सर्वप्रथम परमपिता परमात्मा शिवबाबा का आभार प्रकट करता हूँ जिसने इस लेख के लेखक को प्रखर बुद्धि प्रदान की और उन्होंने परमपिता परमात्मा का परिचय इतनी सरल और प्यारी भाषा में लिखा है जिसे बच्चे, बूढ़े और युवा बहनें-भाई भली प्रकार समझ सकते हैं। मुझे ऐसा भी प्रतीत होता है कि स्वयं बाबा अपना परिचय बोलते गए हों और लेखक महोदय उसे लिखते गये हों। मुझे यह लेख बहुत अच्छा लगा है और मुझे आशा है कि ज्ञानामृत पत्रिका पढ़ने वाले सभी बहन-भाइयों को भी बहुत अच्छा लगा होगा।

इसमें परमपिता परमात्मा और मनुष्यों, देवताओं, धर्मस्थापकों, संन्यासियों, गुरुओं, साधुओं, ऋषि-मुनियों, भक्तों की तुलना करके अन्तर बताकर स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा शिव सारे विश्व की आत्माओं के पारलौकिक पिता हैं। परमपिता परमात्मा की जो महिमा है, वह और किसी की नहीं हो सकती। परमात्मा एक हैं, सर्वधर्म मान्य हैं, सर्वशक्तिवान हैं, सर्वव्यापी नहीं हैं। मेरा यह निश्चय है कि इस लेख को पढ़कर नास्तिक भी परमपिता परमात्मा की सत्ता (वजूद) को मानने पर विवश हो जायेंगे। आस्तिक बन कर उसे (परमात्मा को) सदा उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते, सोते-जागते याद करने लगेंगे। अपने परिचित भाई-बहनों को भी बतायेंगे कि परमात्मा से ऊपर और कोई भी शक्ति तीनों लोकों में नहीं है। हमें परमपिता परमात्मा शिव बाबा के दिये मंत्र 'मन्मनाभव' को सदा बुद्धि में रखना चाहिये और निम्न पंक्तियों को मन ही मन बोलते रहना चाहिये –

'तेरे पास रहने को जी चाहता है,
आके फिर न जाने को जी चाहता है।'

– ब्रह्माकुमार सुख दयाल
ढींगड़ा, पलवल (हरि.)

ज्ञानामृत पत्रिका ही एक अमृत-तुल्य पत्रिका है जिसे पढ़ने से भूली-भटकी दुखी आत्माओं को सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है, मन की दुविधायें खत्म हो जाती हैं, मन शान्त हो जाता है।

– ब्र.कु. पी.चौरसिया, झाँसी

ज्ञानामृत के अप्रैल, 09 के अंक में प्रकाशित लेख 'सादगी' पढ़कर मन बहुत ही सादगी से परिपूर्ण हो गया। पढ़ने के उपरांत अच्छा महसूस हुआ कि जहाँ सादगी है वहाँ विनम्रता भी होगी जिसमें भारत के ऋषि-मुनियों का उदाहरण आज के समयानुसार बहुत ही रोचक साबित होता है कि आज के ऋषि-मुनि सादगी के अभाव में जंगलों और पहाड़ों व प्रकृति की गोद छोड़, शहरों की ओर गमन करते जा रहे हैं। कलियुग का भी अंतिम समय चल रहा है, साथ-साथ मनुष्यों की सादगी का भी समयानुसार अंतिम समय चल रहा है। जैसे-जैसे मनुष्यात्मायें कलियुग से निकलकर संगमयुग में प्रवेश करती जा रही हैं, वैसे-वैसे वे दैवी गुणों (नम्रता, दया, सरलता, मितव्ययता, समर्पण, शालीनता, निरहंकारिता, सत्यता, एकांतप्रियता, न्यारापन, अनासक्ति, अहिंसा इत्यादि) को जीवन में धारण करने से सादगी से भरपूर होती जा रही हैं। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की शाखायें देश के कोने-कोने में ईश्वरीय ज्ञान-योग की शिक्षा दे रही हैं। यह संस्था मनुष्य को श्रेष्ठ जीवन जीने की नियमित कला सिखा रही है जो चिरस्मरणीय है।

– ब्रह्माकुमार अमृतलाल शर्मा,
टोंक (राज.)

योगी के लिए स्वादेन्द्रिय को नियंत्रण में रखना भी ज़रूरी है क्योंकि भोजन-लोलुपता, पेय पदार्थों के लिए तृष्णा और स्वाद की पराधीनता भी एक प्रकार की बाह्यमुखता ही है और देह अभिमान का रूपांतरण है जो कि मनुष्य को बार-बार स्थूलता की ओर ले जाता है।

तलाश जो पूरी हो गई

• श्री श्री 108 शिवानन्द महाराज, रुद्रपुर

मैं ने सपने में भी नहीं सोचा था, साधारण-सी दिखने वाली ये ब्रह्माकुमारी बहनें इतनी विद्वान हो सकती हैं। इसमें भी आश्चर्य यह है कि एक से बढ़कर एक विद्वान हैं। हम तो उनके सामने ऐसे हैं जैसे शेर के सामने मेमना।

आश्चर्यचकित था महिलाओं की संपूर्ण भागीदारी से

आज से 40 वर्ष पूर्व ईश्वरीय विश्व विद्यालय से संपर्क हुआ था। भारत पैदल भ्रमण के दौरान, मैं पाण्डव भवन के सामने वाले पेड़ के नीचे ठहरा था कुछ समय के लिए, तब वहाँ इतना सब कुछ नहीं था। मुझे भगवान की पहचान देने का पूरा पुरुषार्थ किया था भाई-बहनों ने परन्तु मैं तो अपने नशे में था। वैसे भी इन छोटी उम्र की लड़कियों को भगवान कैसे मिल सकते हैं, इसलिए इनकी बात का मुझे कतई विश्वास नहीं था क्योंकि साधु-संतों की साधना का पथ भी मैंने करीब से देखा है। सबकी बात नहीं कहता पर जो असली संन्यासी हैं, वे पूरा जीवन कड़ी तपस्या करते हैं फिर भी मिलता कुछ भी नहीं। कभी-कभी तो मैं यह भी सोचता था, यह संस्था शायद पुरुषों को कमज़ोर समझती है और उनको नीचा दिखाने वाली है। इसमें महिलाओं की संपूर्ण भागीदारी से मैं आश्चर्यचकित था क्योंकि आज के दौर में महिलायें दुनिया की समस्याओं की जड़-सी बन गई हैं जिस कारण विकार तो हैं ही परन्तु शिक्षा का गिरता स्तर, धार्मिक संस्कारों की कमी, फैशन, चरित्र का पतन आदि भी हैं।

चला था कन्याकुमारी से पहुँच गया ब्रह्माकुमारी में

यहाँ मैंने इन सभी बुराइयों का पूर्ण अभाव देखा। सादगी और पवित्रता से सजी साकार तस्वीरें! यह सब अपनी आँखों से देखने के बाद भी बुद्धि का ताला बंद रहा क्योंकि मैं था हठयोगी संन्यासी, और मैंने भी क्या नहीं किया; ढाई वर्ष तक एक पैर पर खड़ा रहा; वर्षों मौन भी रखा; अन्न का त्याग छोटी-छोटी बातों पर कर देता था। जब तक बात मान न ली जाये, मेरा अनशन जारी रहता था। शासन-प्रशासन को कई बार अपनी हठधर्मी से झुकाया भी, बात तो मेरी सच्ची होती थी पर तरीका ग़लत था, यह अब समझ में आया है।

मैंने चार वर्ष और तीन महीने 'भारत पैदल-यात्रा' की। उस समय उम्र 26 वर्ष थी। उस दौरान आश्रमों, अखाड़ों, मन्दिरों व साधु-संतों के बहुत करीबी संबंध-संपर्क में आया। मेरा मकसद भी यही जानने का था कि कहाँ क्या कुछ है। मैं हर बड़े-

छोटे आश्रम में गया, जगतगुरुओं से मिला। मैं तो सबसे मिला परन्तु मुझे ही कुछ नहीं मिला। हाँ, मैं चला था कन्याकुमारी से, पहुँच गया ब्रह्माकुमारी में।

सब कुछ करके भी मैं खाली था

जीवन का वह पड़ाव भी आया जब मेरी बुद्धि का ताला खुला। हुआ यह कि मैं यात्रा कर नैनीताल के पास रुद्रपुर शहर आया और प्राचीन दुधिया बाबा संन्यास आश्रम में ठहरा। वहाँ की स्थिति बड़ी दयनीय थी। मुझे उसे संवारने की ज़िम्मेवारी सौंपी गई। जंगल ही जंगल, निकट श्मशान घाट, पास में गंदी नदी, चारों ओर जंगली जानवर, फिर भी मैं वहाँ ठहर गया। एक बार तो तूफ़ान में, आश्रम की छत मेरे ऊपर गिर गई, मैं दब गया, दो दिन बाद सकुशल जिन्दा निकला। मैंने उस आश्रम को अथक

मेहनत से संवारा भी बहुत परन्तु इन सब खटरागों से मेरा मन ऊब गया, मैं थक गया, निराश हो गया, मन ही मन छटपटा उठा, इतना सब कुछ करके भी खाली था, जीवन पूरा अस्त-व्यस्त था।

चारों ओर दिखावे व साधना के ढोंग मैंने देखे। सच को मैं छिपाना नहीं चाहता, बताने में शर्म भी कैसी! कहीं कुछ नहीं, यह अपने ढंग का बाज़ार है, व्यापार है, भक्ति तो बाहर का दिखावा है। भगवान बेचे भी जाते हैं, खरीदे भी जाते हैं और सब कुछ उनके सामने हो रहा है! मेरी श्रद्धा भी लड़खड़ाने लगी थी। गुरुओं की शान-शौकत भी देखी तो संतों की भीड़ भी।

उजाला हो गया दीवाली से पहले

तब जाकर वह दिन आया जब तलाश पूरी हुई। साधना शुरू हो गई, भक्ति पूरी हो गई। हुआ क्या? दीवाली से दो-चार दिन पहले अचानक ही रुद्रपुर सेवाकेन्द्र की संचालिका बहन हमारे संन्यास आश्रम पधारी। शाम का समय, उजले-उजले वस्त्र, बस पाँच मिनट ही रुकी होंगी, ना बैठी, ना जलपान किया, बस एक झलक देकर, एक साथ सब दे गई। जीवन से झलकती पवित्रता, तपस्या का तेज, गजब की शालीनता, चेहरे पर दिव्यता देख मैं जब तक कुछ समझ पाता तब तक तो वे यह कहते हुए प्रस्थान कर गई – 'महाराज जी, अब आपकी बारी है, हम इंतज़ार करेंगे आपका।' मैं कुछ भी समझ न पाया, दीवाली से पहले ही घर में जैसे उजाला हो गया। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मैं हैरान था, यह दृश्य इतना अलौकिक था, वर्णन नहीं कर पाऊँगा परन्तु सच्चाई छिपा भी नहीं सकता। मुझे रात भर नींद नहीं आई। मैं सवेरे का बेताबी से इंतज़ार करने लगा और सोचता रहा, मेरे इस आश्रम पर, मेरे आवास तक आज तक किसी माता या बहन ने आने का साहस नहीं किया पर यह बहन तो आश्रम का क्या, मेरे मन का भी दरवाज़ा खटखटा गई। मुझे तो माँ सरस्वती से कम नहीं लगी, डूबती नाव को जैसे दिशा दे गई।

भगवान ने मुझे चुन ही लिया

मैंने कभी यह सोचा था कि ब्रह्माकुमारी आश्रम में बिना बुलाये नहीं जाऊँगा। यह तो घमंड था मेरा। अब तो घमंड भी चूर हुआ और मैं नतमस्तक भी हो गया। एक विशेष बात, हम तो हठयोगी थे, साधना का तरीका हठ था, समझदारी नहीं। मैं पान बहुत खाता था। मैंने एक ही रात में, पान की निशानियाँ समाप्त करने का काफी प्रयास किया। मुझे लग रहा था कि मैं कैसे सामना कर पाऊँगा। सुबह होते ही मैं आश्रम जा पहुँचा, लगा, अपने परिवार में आया हूँ। स्वच्छता, पवित्रता और गहन शान्ति मानो स्वर्ग में पहुँच गया हूँ। कहाँ तो मैं इतना स्वाभिमानी था कि अगर किसी ज़िद्द पर अड़ जाता तो बात मनवाना मेरे प्राणों की बाजी होती, स्वयं मंत्री या शासन-प्रशासन ही अनशन तुड़वा पाते थे। मुझे लोगों के पाखण्ड रास नहीं आते थे, मैं कुछ कर डालना चाहता था। मैंने कइयों की धुनाई भी की थी इसी कारण से परन्तु **ब्रह्माकुमारी आश्रम में गया तो झुकने की तो बात छोड़िए, मैं ज़मीन पर बैठ गया। संन्यासी नहीं, भगवान का बालक बन गया, नतमस्तक हो गया। संन्यासियों ने तो जगत को मिथ्या कहा, इन बहनों ने मिथ्या को स्वर्ग बना दिया। सबसे अच्छी बात**

तो यह कि हमने भगवान को ढूँढा बहुत; मिला कुछ नहीं; सारा समय जटाओं को बढ़ाने में, कर्मकाण्डों में बीत गया। जो किया, दुनिया को दिखाया पर भगवान को दिखाने के लिए कुछ नहीं किया। भगवान ने पता नहीं, कैसे और क्यों मुझे देख (चुन) ही लिया। शुक्रिया उस घड़ी का, उस लम्हे का, उस दिन का जो मुझे घर बैठे भगवान का परिचय मिला। इसके बाद मुझे आबू से विशेष निमंत्रण मिला, परकाया प्रवेश रूप में अवतरित हुए भगवान से मिलने का। उससे पहले मैं मधुबन (माउंट आबू) धर्म सम्मेलन में भी आया था। मेरा बहुत सम्मान हुआ था और दिल की बात कहने का सौभाग्य भी मिला था। पर जब शिवबाबा से मिलने पधारा तो बाबा से तो मेरा सीधा संवाद हुआ। बाबा ने किसी धारणा के लिए हाथ उठवाये थे। मैंने नहीं उठाया था तो बाबा ने कहा था – आप हाथ क्यों नहीं उठाते हो? फिर मैंने बहुत बड़ा हाथ उठाया और कहा, बाबा हम उत्तरांचल से आये हैं। बाबा मुस्कराये और मैं भी।

भाग्य हमेशा पुण्य कर्मों से बनता है। मैं अपनी कह रहा हूँ, मेरे जैसा हठयोगी संन्यासी पत्थरदिल पिघल गया। **मैं दावे से कहता हूँ, भगवान से मिलना है तो जाओ ब्रह्माकुमारियों के पास और उन्हें सिर्फ आँखों से नहीं, दिल की भावनाओं से देखो। तुम्हें प्यार भी मिलेगा, भरपूर सम्मान भी और ईश्वरीय शिक्षा भी। मुझे सब कुछ मिल गया है। अब दिल गाता रहता है – 'चमके क्यूँ न भाग्य भला भगवान जो चमकाये।'**

अब तलाश पूरी हो गई और क्लास शुरू हो गई। रोज़ मुरली सुनता हूँ। आप भी जाना ज़रूर, खाली हाथ नहीं आओगे, यह मेरा वादा है। ❖

तीन प्रकार के बच्चे

ब्रह्माकुमार प्रकाश चन्द्र, साहिबाबाद

पिताजी थके-हारे घर लौटे और अपने आँख के तारों को उनकी आँखें ढूँढ़ने लगीं। पता चला, एक पुत्र दोस्तों के साथ बाहर गया है, पता नहीं है कहाँ और लौटेगा कब । दूसरा पुत्र रिमोट हाथ में लिए, टी.वी. के पर्दे पर आँख गड़ाए बैठा है, किसी के आने-जाने से बेपरवाह है। तीसरा पुत्र दौड़कर पिताजी को नमस्ते करता है, पूछता है, आपका दिन अच्छा बीता ना! आप जूते उतारिए, मैं रखता हूँ, आप कपड़े बदलिए, मैं पानी लाता हूँ। फिर चाय-नाश्ता ले आता है और घर-परिवार, पढ़ाई, दोस्तों का सारा समाचार सुनाता है। पिताजी का दिल प्रसन्न हो उठता है, ढेर दुआएँ देता है। इस बच्चे की सब इच्छायें बिन माँगे पूर्ण हो जाती हैं।

परमपिता परमात्मा शिव के तो तीन नहीं, करोड़ों बच्चे हैं पर उनको हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं। जब भगवान शिव सृष्टि पर अवतरित होते हैं और नज़रों से निहाल करने के लिए नूरे रत्न बच्चों का आह्वान करते हैं तो एक श्रेणी उन बच्चों की होती है जो लक्ष्यविहीन, मंज़िल विहीन होकर भटक रहे होते हैं। दूसरे वे बच्चे होते हैं जो अल्पकाल सुख के साधनों को जीवन का लक्ष्य मान उनमें उलझे रहते हैं और **तीसरे वे बच्चे होते हैं जो रोज़ आँख खुलते ही प्यारे पिता को गुडमार्निंग करके ही दिनचर्या की शुरूआत करते हैं, उनको अपना सारा पोतामेल बताते हैं और विश्व परिवर्तन की हर छोटी-बड़ी योजनाओं में सदा मददगार बनकर रहते हैं। इन तीसरी प्रकार के बच्चों को न मिन्नत की, न चापलूसी की ज़रूरत पड़ती है। बिन माँगे भगवान से अथाह प्राप्तियाँ निरंतर होती रहती हैं। परखिए, आप कौन-से बच्चे हैं?** ❖

गतांक से आगे..

जीभ प्रबन्धन

• ब्रह्माकुमार नरेश, मुजफ्फरनगर

प्रातः से लेकर रात्रि विश्राम तक मनुष्य निरंतर संकल्प या विचार करते रहते हैं और अन्य संबंधित मनुष्यों को अपने विचार, बोल के द्वारा सुनाते रहते हैं। ज़्यादा बोलने वाले मनुष्य वे होते हैं जो अपने को ज़्यादा ज्ञानी समझते हैं और बिन माँगे सलाह देते रहते हैं। वास्तव में जो ज्ञानी होगा वह अपने को न तो ज्ञानी समझेगा, न बिन माँगे सलाह देगा और न ज़्यादा बोलेगा। इस संसार में सबसे कम माँगी जाने वाली चीज़ 'सलाह' है और सबसे ज़्यादा दी जाने वाली चीज़ भी 'सलाह' है। सलाह माँगने में 'अहं' आड़े आता है। बातचीत करते समय यह ध्यान रहे कि 1. किससे बात कर रहे हैं, 2. किस विषय पर बात कर रहे हैं, 3. किस उद्देश्य से बात कर रहे हैं, 4. किस स्थान पर बात कर रहे हैं और 5. किस हैसियत से बात कर रहे हैं। बोल का आदान-प्रदान यदि नपा-तुला और संतुलित है तो ऊर्जा, समय, संकल्प व श्वास (स्वास्थ्य) की बचत होती है अन्यथा इन चारों का क्षय तो होता ही है, साथ में काम बिगड़ता है, नुकसान होता है और असंतुष्टता भी प्राप्त होती है।

1. ऊर्जा – आज सारे विश्व में सबसे ज़्यादा कांफ्रेन्स व अनुसंधान, ऊर्जा संकट से निपटने के लिये हो रहे हैं और ठीक नाक के नीचे स्थित जीभ द्वारा सारे दिन में कितनी ऊर्जा की फिजूलखर्ची हो रही है उस ओर किसी का ध्यान नहीं है। जीभ का ज़्यादा 'शाब्दिक ऊर्जावान' होना कई बार खून-खराबा करा देता है, गोलियाँ-बम चलवा देता है और यहाँ तक कि दो देशों में युद्ध करवा देता है। अधिक बोलने वाले (लेक्चरर, प्रचारक, कॉमेन्टेटर, वकील आदि) शाम होते-होते अधिक थकान का अनुभव करते हैं। अधिक सुनने वाले भी कुछ हद तक वैसे ही थका महसूस करते हैं जैसे कि सिगरेट पीने वाले के पास बैठा व्यक्ति निष्क्रिय या पैस्सिव स्मोकिंग *(Passive Smoking)* का शिकार हो जाता है। जीभ के स्वाद हेतु, मुख में गुटखा, तंबाकू आदि रखे रखना सेहत व आंतरिक ऊर्जा को समाप्त करना है। परंतु जीभ द्वारा जो सबसे बड़ा नुकसान पूरी मानव जाति का किया जा रहा है, वह है व्यर्थ के तामसिक संकल्पों को भाषा या शब्दों में बदल कर एक-दूसरे की स्मृति में छाप देना। शब्द जितने ही घटिया, पीड़ादायक या रोमांचकारी होंगे, उनकी उतनी ही स्थायी छाप 'अवचेतन मन (स्मृति)' में पड़ जाती है, ऐसे शब्दों को मनुष्य बार-बार स्मरण कर और भी पक्का करता रहता है। इससे मनुष्य के चरित्र व व्यक्तित्व में निरंतर गिरावट आ रही है। एक छोटा बालक भी आज के माहौल में ऐसे घटिया शब्दों को सुनता है और उसकी वह मन-बुद्धि, जिसे पूरे जीवन को संवारना है, पहले ही मलीन व 'मन्द-बुद्धि' होकर अपनी शक्ति-ऊर्जा खो देती है। एक शिशु को मात्र 'भाषा ज्ञान' ही नहीं बल्कि 'भावना-ज्ञान' भी और शब्दों का 'उच्चारण' ही नहीं बल्कि 'उच्च-आचरण' भी सिखाया जाना चाहिये। 'भाषा-बोल' मस्तिष्क से निकलते हैं और 'भाव-भावना' हृदय से। हृदय की कोई भाषा नहीं है, हृदय, हृदय से बातचीत करता है। अधिक बोलना अर्थात् उतने समय सार्थक कर्म करने से वंचित होना। यदि विज्ञान प्रगति पर है तो उसे ऐसे आविष्कार भी करने चाहिएँ जो जीभ को आराम कराएँ। परन्तु विज्ञान ने 'मोबाइल फोन' का आविष्कार करके सबसे बड़ा अहित जीभ या 'जीभ वाले' का किया है। इससे जीभ की 'मारक क्षमता' में जो इज़ाफ़ा हुआ है, उसके प्रभाव अब

सामने आने लगे हैं। अपराध जगत से जुड़े मनुष्यों के लिए मोबाइल फोन एक वरदान बन गया है। फिर ऐसे अपराधियों को पकड़ने के लिए भी जो 'नारको टेस्ट' कराया जाता है, उसमें जीभ की 'ईमानदारी' वाली भूमिका है। वह जीभ जो चेतन मन के निर्देशानुसार झूठ बोलती है, वही फिर अवचेतन अवस्था में सच उगल देती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि आत्मा का मौलिक गुण है ही 'सच्चाई'। झूठ, फरेब आदि तो आत्मा पर रोपित हैं जिन्हें भेद कर भी सच्चाई उदित हो सकती है।

यदि भोजन करते समय मन अन्यत्र रमण कर रहा है तो जीभ से सभी आवश्यक पाचक एन्जाइम का स्त्राव नहीं हो पाता। इससे वह भोजन न तो पूरा पच पाता है और न ही उससे पूरी ऊर्जा आंतों के द्वारा अवशोषित ही हो पाती है और कब्जियत, एसिडिटी, गैस का बनना आदि अलग से पैदा हो जाते हैं। शरीर को इनसे लड़ने के लिए काफी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। यदि आत्मा जीभ पर ध्यान नहीं देती है तो जीभ भी लापरवाह या मनमौजी बन जाती है। इससे उत्पादन के बजाय ऊर्जा का उपभोग होने लगता है।

2. समय – कम बोलने से ही काम निकल जाता है, समय की बचत होती है। अधिक बोलने से समय निकल जाता है और काम बचा रह जाता है। मीठी खीर खाते हुए कड़वा बोल या कड़वे करेले खाते हुए भी मीठा बोल निकल सकता है। सब कुछ आत्मा के संस्कार पर निर्भर करता है, न कि जीभ पर। जीभ सभी मनुष्यों की एक ही प्रकार की होती है परन्तु फर्क हो जाता है 'जीभ वाले' का। व्यर्थ चिन्तन से व्यर्थ बोल निकलते हैं जो फिर अगले व्यक्ति से भी उसी कोटि के जवाब प्राप्त कराते हैं।

3. संकल्प – जीभ का लाभकारी प्रबन्धन करना है तो वास्तव में आत्मा का प्रबन्धन करना होगा। परन्तु यह तब संभव है जब आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो। यह आध्यात्मिक ज्ञान का क्षेत्र है और मूल रूप से ईश्वरीय ज्ञान से जुड़ा है क्योंकि ईश्वर ही आत्मा के सत्य ज्ञान का एकमात्र स्त्रोत है।

भक्त ईश्वर से बोलता है और एक ज्ञानी ईश्वर से बोलता भी है और सुनता भी है। प्रेम भाव मौन में रहते प्रखर हो पाता है अत: 'मौन' ईश्वर के समीप लाता है। यदि उस 'एक' का ज्ञान हो जाये तो प्रेम की भावना से मौन में रहते उसकी स्तुति की जाये। स्तुति तो संकल्पों द्वारा उससे बात करने से होती है परन्तु आज मनुष्य बात-बात में इतने वाद-विवाद में फंस पड़ते हैं कि याद में रह कर बात करना असंभव हो जाता है। **होना तो यह चाहिये कि 'न बात-बात में बात हो, न बात-बात में वाद। बस बात-बात में याद हो और याद-याद में बात'।**

4. स्वास्थ्य – शरीर के सभी अंगों का प्रत्यारोपण हो जाता है परन्तु मस्तिष्क व जीभ का नहीं होता। महात्मा गांधी सप्ताह में एक दिन मौन रहते थे और उस दिन वे सबसे ज़्यादा काम कर पाते थे। वे कहा करते थे कि जहाँ बोलने के बारे में शंका हो वहाँ मौन रहो। उनके अनुसार मौन सर्वोत्तम भाषण है। महावीर ने बारह वर्षों तक मौन साधना की और फिर शिष्यों से कहा कि अनावश्यक मत बोलो और यदि बोलना ही पड़े तो विवेकपूर्ण बोलो। जीसस अक्सर शिष्यों को छोड़ कर मौन के एकान्तवास हेतु पहाड़ पर चले जाया करते थे।

'अल खामोश नीम राज़ी' अर्थात् मौन रहना स्वीकृति का लक्षण है। यह स्वीकृति अपनी गलती के प्रति भी हो सकती है तो किसी कार्य की रज़ामन्दी के प्रति भी। परन्तु यदि जीभ लाचारीवश खामोश है तो मन में आंधी-तूफान चलते हैं जो फिर ज़्यादा नुकसानदायक होते हैं। उस समय मन में अशुभ संकल्पों का मानो ज्वालामुखी फट रहा होता है। इसके विपरीत यदि मन खामोश है अर्थात् किसी एक सकारात्मक संकल्प में मग्न है तो जीभ हलचल में, वाणी में

आती नहीं है और यदि आती भी है तो उससे मानो मधुर बोल के फूल झड़ते हैं। यही श्रेष्ठ स्थिति है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन को शुरूआत में हज़ारों क्या, लाखों विरोधियों के ताने सुनने पड़े परन्तु वे चुपचाप अपनी खोज में लगे रहे। उनकी इस मौन सहनशीलता की शक्ति ने छोटे-बड़े लगभग हज़ारों आविष्कार किये। यह सही है कि बोलना एक कला है परन्तु चुप रहना उससे भी ऊँची कला है। 'और बात खोटी, सही दाल रोटी' अर्थात् संयमित जीवन निर्वाह ही सबसे बढ़कर व्यवसाय है। 'करनी खाक की, बात लाख की' – ऐसे मनुष्यों की आज कमी नहीं है। कथनी-करनी एक हो, यह नीति का आदर्श है; कथनी-करनी एक न हो, यह आज की राजनीति का विद्रुप रूप है।

आत्म प्रबन्धन से आत्मा को सशक्त किया जा सकता है। 'जीभ प्रबन्धन' सुख-शान्ति व संतुष्टता के मार्ग का प्रबन्धन है। जब जीभ शान्त रहने लगती है तब अन्तरात्मा बोलने लगती है। चूंकि अन्तरात्मा की आवाज़ परमात्मा की आवाज़ जैसी होती है अत: इसे 'आकाशवाणी' कहते हैं। जीभ यदि मनुष्य को वर्तमान के जन्म से इस संसार के करोड़ों मनुष्यों से जोड़ती है तो 'जीभ प्रबन्धन' उसे भविष्य सतयुगी दुनिया से जोड़ने का सेतु हो सकता है। ऐसा इसलिये क्योंकि आने वाली नई सतयुगी दुनिया के लिये जिस आध्यात्मिक पुरुषार्थ की आवश्यकता है, उसकी सफलता के लिए जीभ प्रबन्धन का विशेष महत्त्व है। जीभ प्रबन्धन पतित से पावन बनने में सहायक है। पावन बनने के लिये जो आवश्यक दैवी गुण हैं, वे अल्पभाषी मनुष्यों में प्रवेश कर पाते हैं। सत्यता, नम्रता, ईमानदारी, संतुष्टता, धैर्य, गंभीरता, संतुष्टता, रहम, निर्भयता, दूरदर्शिता, विवेकशीलता इत्यादि गुण धारण करने के लिये अन्तर्मुखी होना ज़रूरी है जो कि जीभ के अन्दर्मुखी (मुँह में बन्द) होने से ही संभव है। जो भी अवगुण या विकार हैं, प्राय: वे बहिर्मुखी या अतिभाषी मनुष्यों में सहजता से प्रवेश कर जाते हैं।

वैसे तो जीभ से जुड़े कई अन्य पहलुओं पर भी विचार किया जा सकता है परन्तु श्रेष्ठ जीभ प्रबन्धन के लिये उपरोक्त बातों के अलावा निम्न बातों पर भी अमल लाभदायक व संतोषप्रद हो सकता है :

1. जीभ को वाचा में लाने से पहले पल भर के लिए यह संकल्प किया जाये कि जीभ आत्मा को प्रत्यक्ष करने जा रही है और इसे आत्मिक गुणों के अनुरूप क्रिया करनी है।

2. यह भी ध्यान रखा जाये कि कहना सब कुछ है परन्तु बोलना कम से कम है। इससे वार्ता सार रूप में होगी, अगले को बात जल्दी समझ में आयेगी और संकल्प, समय व श्वास व्यर्थ नहीं होंगे।

3. यह पुरुषार्थ किया जाये कि सतत् प्रयास से जीभ की वाचा में 90 प्रतिशत की कटौती प्राप्त कर ली जाये अर्थात् वाचा के वर्तमान के स्तर को 10 प्रतिशत के स्तर पर ले आना है। इससे देही अभिमानी स्थिति, स्वाभाविक परमात्म याद की स्थिति व आत्म चिन्तन की स्थिति सहज रूप से प्राप्त होगी। व्यर्थ वाले संबंध-संपर्क स्वत: कम हो जायेंगे।

4. सप्ताह में एक दिन जीभ से डबल उपवास रखवाया जाये अर्थात् जीभ न तो बाहर **भाषण** उतारे और न ही अन्दर **राशन** उतारे। इससे आत्मा अन्तर्मुखता में उतरती जायेगी।

जैसे लिखने में शीघ्रता मुंशी की योग्यता है, लेखक की नहीं, वैसे ही बोलने में शीघ्रता वकील की योग्यता है, जज की नहीं। जज का काम वादी-प्रतिवादी की दलीलों को साक्षी भाव से चुपचाप सुनना है और निष्पक्ष फैसला करना है। आज वकील तो सभी हैं परन्तु अपने कर्मों का जज विरला कोई है। आइये, अपनी दैवी व आसुरी वृत्तियों के चल रहे विवाद में, जीभ को वकील न बनने दें, इसे जज बनायें। ❖

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय मेरी नज़र में

• ब्रह्माकुमार दलशृंगार कुशवाहा 'कुश', वाराणसी

अपने ढंग का अनूठा, बेमिसाल है प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय जिसकी शाखायें न केवल भारत में अपितु विदेश में भी दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती जा रही हैं। महिलाओं द्वारा संचालित इस संस्था की मुख्य प्रशासिका दादी जानकी जी हैं। यहाँ थोड़ा-सा समय लगा देने से जीवन सुखमय और प्रारब्ध से भरपूर बनता जाता है, बिना शिक्षा ग्रहण किये अनुदान भी ग्राह्य नहीं, जातिगत भेदभाव नहीं, छूआछूत कोसों दूर।

एक दशक पूर्व मैं सारनाथ में उप-डाकपाल पद पर कार्यरत था। सड़क से गुज़रते समय एक बोर्ड दिखाई पड़ा, लिखा था, 'प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय'। देखकर आश्चर्यचकित हुआ कि ऐतिहासिक बुद्धनगरी में ईश्वरीय विश्व विद्यालय कहाँ से आया? एक श्वेतवस्त्रधारी से मिलने पर दोनों ओर से परिचयात्मक आदान-प्रदान हुआ। लगभग एक सप्ताह में प्रारंभिक कोर्स पूरा हुआ। इसके बाद ऐसा लगा कि कोई खोई हुई वस्तु मुझे प्राप्त हो गई है जिसकी बरसों से तलाश थी। आश्रम में एक सफेदपोश भाई प्रबंधनकर्त्ता के रूप में मिला। उसका ब्रह्मचारी जैसा स्वरूप, तपस्वी जैसा तेज, चमकता ललाट देखकर बरबस आदमी आकृष्ट हो जाता था। कई बृहस्पतिवार तक भोग (ईश्वरीय प्रसाद) पाने के बाद मैंने पूछा, भैया, इसकी व्यवस्था कैसे चलती है? उत्तर मिला, ब्रह्माकुमार-ब्रह्माकुमारियों के सहयोग से ही संभव हो पाता है। फिर क्या था, मैंने भी भोग की तालिका में नाम लिखवा लिया। समय बीतता गया। मुरली से लेकर अन्य कोई कार्यक्रम छूटता नहीं था। संस्था (आश्रम) में अजीबोगरीब खूबियाँ देखने को मिलीं। सभी बराबर सम्मान पाने के हकदार हैं। अभिवादन झुककर, हाथ जोड़कर नहीं, मात्र मुस्कराकर ओमशांति कहना ही अभिवादन है। माला, फूल चढ़ाने की ज़रूरत नहीं, चरण स्पर्श नहीं, कोई बाह्याडम्बर नहीं। मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक कोई शुल्क नहीं, जो देना है, स्वेच्छा से देना।

सरल साधना

साधना क्या करनी होती है, उसे भी जान लिया जाये। साधना पहले तो दुरूह, बाद में अत्यंत आसान हो जाती है। पहला कदम है, अमृतवेले में शिव परमात्मा की प्यार भरी स्मृति। दूसरा कदम, मन में पवित्रता का भाव; शुद्ध शाकाहारी आहार व व्यवहार; तामसी वस्तुएँ जैसे कि प्याज, लहसुन, नशे, माँस तथा अस्वच्छ वस्तुओं का परित्याग; मानव बनने तथा बनाने का प्रयास; कोई भी कार्य करते समय शिव बाबा का स्मरण व ध्यान; बुरी आदतों की जाँच कर उन्हें मिटाते जाना; कर्णप्रिय मधुर वाणी का प्रयोग। तीसरा, बाबा की मुरली अवश्य सुनना और सुनाना। चौथा, आश्रम में उपस्थिति से पूर्व स्नान, बाबा को भोग लगाकर ही खान-पान करना, समय का सदुपयोग, बाबा का प्रचार-प्रसार, ज्ञान-गंगा में स्नान करने हेतु 'ज्ञानामृत' पत्रिका पढ़ना, बिंदुस्वरूप शिव बाबा का ध्यान, अनुशासित रहना, मनोविकारों से दूर रहना, भूल स्वीकार करने में कोई झेंप नहीं रखना। पारस्परिक सहयोग, बदला लेना नहीं अपितु अपने आपको बदल देना।

शिव बाबा ही करनकरावनहार

यदि उपरोक्त बातें आप अपने जीवन में दिन-प्रतिदिन उतारते जाएंगे तो फरिश्ता बन जाएंगे, यह ध्रुव सत्य है। पुरुषार्थ सफलता की जननी है। ईश्वरीय याद की भट्ठी में आत्मा को तपाने से वह निर्मल बन जाती है। आत्मा व परमात्मा के मिलन को ही योग कहते हैं।

एक किस्सा याद आता है। आश्रम बनाने वाले ठेकेदार ने पूछा, सीमेंट कहाँ रखा है? ब्रह्माकुमार भैया ने तपाक से उत्तर दिया, बाबा से पूछें। मैंने कहा, भैया, इन कामों से बाबा का क्या लेना-देना। उन्होंने जो उत्तर दिया, आज भी याद है। बोले, हम लोगों की क्या हस्ती है जो आश्रम बनवा पाएंगे। चलिए बाबा का ध्यान करें और ध्यानमग्न हो गए। सच है, शिवबाबा ही करनकरावनहार है।

❖

व्यसन – मौत की शहज़ादी को निमंत्रण (2)

• ब्रह्माकुमारी उर्मिला, शान्तिवन

पुरानी कहावत है, 'चिन्ता तेरी तभी मिटेगी जब चिन्तन में ले लो राम' लेकिन व्यसनियों ने इस कहावत को उलट दिया है। उन्होंने आखिरी शब्द 'राम' को 'रम' बना दिया है। वे चिन्ता मिटाने के लिए 'रम' का चिन्तन करते हैं। 'रम' से या किसी भी व्यसन से चिन्ता मिटती नहीं है, हाँ, थोड़ी देर के लिए उस पर से ध्यान हट जाता है परन्तु इसका सबसे बड़ा नुकसान यह होता है कि काम की बातें भी भूलने लगती हैं, दिमाग की स्मृति शक्ति कमज़ोर होते-होते नष्ट हो जाती है। काम की बातें भूलने से कई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं, उन समस्याओं को मिटाने के लिए अधिक व्यसन लिए जाते हैं, इस प्रकार यह कुचक्र चलता ही रहता है। व्यसनी हाथ पर तम्बाकू रगड़ते हैं। वहाँ हमारी जीवन-रेखा है, वह धीरे-धीरे मिटती जाती है और वह समय से पहले ही संसार से कूच कर जाता है। भगवान कहता है, अभी तो तुझे सौ साल जीना था, तू जल्दी वापस आ गया, फिर जा, बेचारा फिर जन्म ले लेता है। इस प्रकार, जल्दी-जल्दी मृत्यु और जन्म के कुचक्र में सदा फंसा रहता है।

उत्पादक कोठी में उपभोक्ता कोठरी में

किसी ने कहा, ये उत्पादक अगर इन चीज़ों का उत्पादन ही बन्द कर दें तो कितना अच्छा हो। परन्तु किसी भी लाभ वाले सौदे को कोई यूँ ही थोड़े छोड़ देता है। बीड़ी, सिगरेट, गुटखे की कम्पनियों के मालिक कारों में चलते हैं, उनकी गाड़ी पीछे की ओर धुआँ छोड़ती है परन्तु बीड़ी आदि पीने वाला तो पैदल चलता है और आगे की ओर धुआँ छोड़ता है। कम्पनी मालिक के स्वस्थ बच्चे, विदेशों में पढ़ते हैं और पीने, खाने वाले के बच्चे नंग-धड़ंग गलियों में लोटते हैं, स्कूल के लिए बस्ता और फीस नहीं मिलती, भूखे रहते हैं और कहीं बाल-मज़दूरी में लगकर समय से पहले बूढ़े लगने लगते हैं। कम्पनी मालिक की जेब भरती है और पीने वाले की जेब खाली होती है। कम्पनी मालिक की तो बड़े शहरों में कई कोठियाँ हैं परन्तु पीने वाले की तो कच्ची कोठरी की भी बिकने की नौबत आ गई, बरसात में टपकती तो पहले ही रहती थी। अब बताइये, घाटे में कौन और फायदे में कौन? फायदे वाला अपना धन्धा बन्द करे या घाटे वाला अपनी आदत छोड़े? नियम तो यही कहता है कि घाटे वाला अपनी आदत छोड़े तो फायदे वाले का फायदा बन्द हो जाएगा, उसका धन्धा आपे ही छूट जाएगा।

धर्मराज की दुविधा

भारत की माताएँ, बहनें, पत्नियाँ अपने पुत्र, भाई, पति की लम्बी आयु के लिए व्रत करती हैं। पूजास्थल पर अगरबत्ती जलाकर आरती करती हैं और इष्ट से उनकी लम्बी आयु मांगती हैं। दूसरी तरफ, व्यसनी भी अपने मुँह में एक अगरबत्ती लगाए हुए है और वो भी अरदास कर रहा है, ''मैं जल्दी जाऊँ, मैं जल्दी जाऊँ...।'' अब धर्मराज दुविधा में पड़ जाता है कि किसकी सुनूँ। अब चूंकि माताओं-बहनों की अगरबत्ती तो दिन में एक बार या वार-त्योहार ही लगती है पर व्यसनी की व्यसन-बत्ती तो दिन में कई बार लगती है, इसलिए उसकी सुनवाई जल्दी हो जाती है, उसकी भावना जीत जाती है और बिचारी माताएं-बहनें हाथ मलती रह जाती हैं। धुआँ असरदार हो जाता है और दुआ बेअसर रह जाती है।

तम्बाकू के साथ बहुत कुछ जला

व्यसनी के मुँह में बीड़ी, सिगरेट जली तो इसके साथ उसकी जेब का कीमती नोट भी जला, धुएं से उसका दिल जला, घर के प्यारे-मीठे सम्बन्ध जल गए, सुख-शान्ति जल गई और बच्चों का भविष्य जल गया। बूढ़े माँ-बाप की बुढ़ापे की लाठी जल गई और समाज का वो कर्ज़ भी जल गया जो व्यसनी के सिर पर था, जो समाज को कभी वापस नहीं मिल पाएगा।

क्या इनसे सरकार को आय होती है?

तम्बाकू उत्पादों या नशीली चीज़ों

की बिक्री से भारत सरकार को जितनी आय होती है उससे दस गुना ज़्यादा पैसा तम्बाकू से होने वाले रोगों के इलाज में चला जाता है।

क्या इनको बन्द करने से बेकारी फैलेगी?

एक व्यक्ति झगड़ा कर रहा था, दूसरे ने कहा, भाई, झगड़ा अच्छा नहीं है। तीसरे व्यक्ति ने कहा, अच्छा नहीं पर ज़रूरी है। पूछा गया क्यों, तो उत्तर मिला, नहीं तो कचहरी बन्द हो जाएंगी और वकील बेकार हो जाएंगे। व्यसनों का कारोबार बन्द होने से बेकारी फैलेगी, यह तर्क भी उपरोक्त तर्क जैसा ही है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि व्यसनों से प्राप्त रोज़गार का ढांचा दूसरों की लाशों पर खड़ा है। क्या हम ऐसे रोज़गार निर्मित नहीं कर सकते जो किसी की आहों और बद्दुआओं से अटे हुए ना हों, नहीं तो यह सौदा ऐसा ही है कि किसी की जेब भरेगी और किसी की सांस रुकेगी।

प्रकृति द्वारा उत्पन्न हर चीज़ खाद्य है क्या?

लोगों का तर्क है कि ये भी तो धरती माता की देन हैं, प्रकृति ने खाने के लिए ही उपजाए हैं। परन्तु प्रकृति प्रदत्त हर वस्तु खाद्य नहीं है। उदाहरण के लिए, अक और धतूरे के पौधे, इनका प्रयोग मृत्यु को निमन्त्रण देने के समान है। इन्हें कोई भी मनुष्य स्वेच्छा से नहीं खाता। कई प्रकार की घास से मनुष्य को खुजली आदि रोग हो जाते हैं, उनका भी उन्मूलन कर दिया जाता है। और फिर कितने ही ज़हरीले जानवर भी तो प्रकृति की देन हैं– सांप, बिच्छू आदि। क्या हम उनके ज़हर को स्वीकार करेंगे? प्रकृति जब सतोप्रधान थी तब इसमें तमोगुणी चीज़ें उगती ही नहीं थीं। सतयुगी-त्रेतायुगी भारत में इस प्रकार की नशीली चीज़ों का बीज ही नहीं था। वैसे भी तम्बाकू का इतिहास बताता है कि यह भारत में बाहर से आया है। कोलम्बस जब अमेरिका पहुँचा तो करेबियन समुद्र के टापुओं पर आदिवासी प्रजा किसी पौधे के पत्ते चबाती थी और इसके पत्ते जलाकर आदिवासी लोग उसका धुआं 'टाबको' नाम की छोटी नली से चूसते थे। कालान्तर में इसी टाबको से इसका नाम तम्बाकू पड़ गया। कोलम्बस और उसके साथी इसे यूरोप ले गए और 250 वर्ष पहले अंग्रेज़, इसे बेचकर धन कमाने के लिए इसे भारत में ले आए। धन के लालची अंग्रेज़ों ने भारत की भोली जनता को इसका आदी बनाने के लिए कई हथकण्डे अपनाए और दैवी सभ्यता वाले भारतीय इस अखाद्य के गुलाम बन गए।

क्या तम्बाकू उत्पादन के योग्य ज़मीन बेकार हो जाएगी?

इस तर्क का उत्तर ऊपर की चर्चा में आ चुका है क्योंकि देश की भूमि पर अंग्रेज़ों के ज़माने में ही तम्बाकू का उत्पादन शुरू हुआ, इससे पहले तो था ही नहीं। अत: भूमि के बेकार होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो चीज़ पहले भी नहीं थी, वो आगे भी ना रहे तो क्या नुकसान है?

क्या गुटखे को गटकना इतना ज़रूरी है?

उस दिन गामाराम दूध वाले से झगड़ रहा था। मैंने पूछा, 'क्या बात है भाई?' कहने लगा, 'देखो कल तक दूध 15 रुपये लीटर था, आज 16 रुपये लीटर कर दिया है। दूध भी तो देखिए, एकदम पानी, मिलावट की भी हद होती है।' हम अक्सर चीज़ों के भाव बढ़ने पर, मिलावट होने पर दुखी होते हैं परन्तु जेब में, चमकदार कागज़ में लिपटा जो ज़हर पड़ा है, उसमें क्या-क्या मिलावट है, क्या हम जानते हैं?

तम्बाकू के कारखाने में जो धूल उड़कर फर्श पर गिर जाती है उसे झाड़ू से इकट्ठा करके और उसमें खुशबूदार पदार्थ मिलाकर उसे गुटखे का रूप दिया जाता है। इसे जिह्वा के नीचे रखा जाता है क्योंकि जिह्वा की रक्तवाहिनियाँ इसे जल्दी रक्त में घोल देती हैं। इससे मुख-कैन्सर हो जाता है। दुनिया में यह अनुपात 3 प्रतिशत से 4 प्रतिशत है लेकिन भारत में 40 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक है। इससे मुख का स्वाद खत्म हो जाता है, भूख समाप्त हो जाती है, हृदय की धड़कन बढ़ती, हृदय का काम बढ़ता परन्तु रक्त की आपूर्ति नहीं बढ़ती, इस कारण हृदय रोग हो जाता है।

इस ज़हरीले कूड़े को हम 50 पैसे

से लेकर 5 रुपये प्रति पुड़िया तक के हिसाब से खुशी से खरीदते हैं। वैसे कोई जेब को हाथ लगाए तो हम उसे जेबकतरा कहते हैं, परन्तु चमकदार कागज़ में लिपटे इस कूड़े के बदले हम स्वेच्छा से जेब कटवाते हैं। दूध की कीमत बढ़ने पर हम दूध वाले से झगड़ा करते हैं परन्तु इस कूड़े के बदले तो हम सारे के सारे (हैल्थ वैल्थ सहित) बिकने को तैयार हो जाते हैं। जब अंग्रेज़ भारत को लूट रहे थे तब हम कहते थे, विदेशी हैं, उन्हें हमारा दर्द क्यों होगा, पर आज तो स्वदेशी, स्वदेशियों के हाथों ही लुट रहे हैं। गुट, बन्द मुट्ठी को कहते हैं, गुटखा (गुट +खा) खाना, बन्द मुट्ठी की मार खाने जैसा ही है, नहीं, नहीं, उससे भी बुरा है क्योंकि मुट्ठी की मार का इलाज हो सकता है पर गुटखे की मार लाइलाज है।

ज़र्दा अर्थात जल्दी मरना

तम्बाकू का ही दूसरा नाम ज़र्दा भी है। बीसवीं सदी में तम्बाकू के कारण 20 करोड़ लोग काल कलवित हुए। 21 वीं सदी में इनके 5 गुना बढ़ने का अनुमान है। विश्व में प्रतिवर्ष 40 लाख लोग तथा भारत में लगभग 9 लाख लोग इसके कारण काल का ग्रास बन जाते हैं। तम्बाकू में लगभग 400 प्रकार के विषैले तत्व पाये जाते हैं जिनमें से निकोटिन नामक एल्कोलायड तेज़ी से असर करने वाला ज़हरीला यौगिक है। इसकी केवल 8-10 बूंदें ही घोड़े जैसे शक्तिशाली जानवर को मौत के घाट उतार सकती हैं। केवल एक मिलीग्राम निकोटिन की मात्रा खून में आने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। सिगरेट के लिए तम्बाकू तैयार करने हेतु, एक टन तम्बाकू को भूनने के लिए लगभग ढाई टन लकड़ी की खपत होती है जो जंगलों के विनाश का प्रमुख कारण है, फलस्वरूप पर्यावरण को गम्भीर क्षति पहुंचती है। धूम्रपान से तो वातावरण दूषित होता ही है।

पढ़ना नहीं आता क्या?

अमेरिका में एक व्यक्ति को सिगरेट पीते-पीते कैन्सर हो गया। उसने उच्चतम न्यायालय में केस डाल दिया और सिगरेट कम्पनी को कैन्सर का ज़िम्मेदार ठहराते हुए उससे हर्जाने के कई लाख रुपये मांग लिए। कम्पनी ने कहा, पढ़ना नहीं आता क्या? सिगरेट के पैकेट पर लिखा है, 'सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।' उस व्यक्ति ने कहा, पहली बार मेरे मित्र ने एक सिगरेट दी थी, उस पर कहां लिखा था? कम्पनी केस हार गई पर अब कम्पनी समझदार हो गई और 'वैधानिक चेतावनी' हर पैकेट के साथ-साथ हर सिगरेट पर भी लिखना शुरू कर दिया। अमेरिका में एक सिगरेट खरीदने पर भी एक मुफ्त पुस्तिका मिलती है जिस पर लिखा होता है कि इसको पीने के कितने हानिकारक प्रभाव हैं, फिर भी जिनकी विवेक की लगाम एकदम ढीली है, वे उस ज़हर को पैसे देकर खरीदते और पीते हैं।

एक बण्डल बीड़ी का खर्च

सामान्यत: एक बण्डल बीड़ी 7 रुपये में और माचिस 50 पैसे में आ जाती है। इस प्रकार एक बण्डल प्रतिदिन पीने वाले का न्यूनतम खर्च 7.50 रुपये बनता है। एक मास का $7.50 \times 30 = 225$ रुपये और एक वर्ष का $225 \times 12 = 2700$ रुपये बनता है। यदि इस राशि को बैंक में रखा जाए तो अगले 10 वर्षों में यह दोगुनी हो सकती है। इस प्रकार जोड़ लगाने से आगे के वर्षों में राशि कई लाखों तक पहुँच जाती है। जो लोग शराब, अफीम, गांजा, भांग, सिगरेट, गुटखा आदि व्यसनों का भी सेवन करते हैं उनके खर्च का तो अनुमान लगाना ही कठिन है। भारत की गरीबी का असली कारण तो ये हैं।

एक बार, एक विद्यालय में गणतन्त्र दिवस कार्यक्रम में हमें प्रवचन का निमन्त्रण मिला था। प्रधानाध्यापक ब्रह्माकुमारी संस्था को अच्छी तरह से जानते थे। प्रवचन के बाद उन्होंने विद्यालय की चारदीवारी दिखाते हुए कहा, बहन जी, सिर्फ 15 हजार रुपये की बात है, यदि आप अपनी संस्था से दिलवा दें तो हमारा बोझ हल्का हो सकता है। मैंने कहा, आपका विचार तो शुभ है परन्तु मेरे मन में भी एक शुभ विचार है। आप अपने कार्यालय में

(शेष.. पृष्ठ 26 पर)

आत्मा को उजला करने वाला है शिव बाबा

• ब्रह्माकुमारी सुमन, अलीगंज (लखनऊ)

पहले जमाने में धोबी से कपड़े धुलवाए जाते थे। गंदे कपड़ों को धोबी लोग, रेहु (एक प्रकार की सोडियम युक्त मिट्टी) में लपेट कर, दो दिन रखकर फिर मसाला डालकर आग की भट्ठी पर चढ़ाते थे। इसके बाद नदी या तालाब के पानी में खड़े होकर लकड़ी या पत्थर के पट्टे पर पीट-पीट कर कपड़े धोते थे। बदले में मिलता था उनको थोड़ा-सा अनाज लेकिन सुखी बहुत रहते थे। बाद में समय बदला, मानसिकता बदली और बदल गई सारी पुरानी गतिविधियाँ। आज विज्ञान के युग में हर कार्य विज्ञान के माध्यम से होता है जिसमें समय की बचत और कार्य में अधिक सफाई भी रहती है। विज्ञान ने कपड़े धुलाई के लिये एक से बढ़कर एक मशीनें दे दी हैं जिनमें गंदे से गंदा कपड़ा भी कम से कम समय में व बिना मेहनत के अच्छा धुल जाता है। इससे धोबियों की रोजी-रोटी का सवाल उठ खड़ा हो गया है। दुनिया की हर एक चीज़ पर विज्ञान का वर्चस्व कायम हो चुका है परंतु एक क्षेत्र अभी तक भी विज्ञान की पहुँच और पकड़ से अछूता है। विचार कीजिए, कौन-सा क्षेत्र?

यह क्षेत्र है विज्ञान के रचयिता मानव को साफ, सुथरा, उजला करने का क्षेत्र। मानव आत्मा के शुद्धिकरण का कार्य विज्ञान नहीं कर सकता क्योंकि विज्ञान स्वयं मानव की रचना है और रचना कभी अपने रचयिता का सुधार और शुद्धिकरण नहीं कर सकती। अपने रचयिता को वह सुविधाएँ प्रदान कर सकती है पर उसके जीवन को सर्वगुण संपन्न, सर्वकला संपन्न और संपूर्ण सुख-शान्ति से संपन्न नहीं कर सकती। वैसे भी हर चीज़ को एक ही तरीके से नहीं साफ किया जा सकता। कपड़ों को धोने के लिये पानी का उपयोग होता है। कुछ कपड़े कैरोसीन व पैट्रोल से साफ होते हैं। सोने को अग्नि ही साफ कर सकती है। स्थूल चीज़ों को स्थूल साधनों से साफ किया जा सकता है परन्तु आत्मा रूपी सूक्ष्म सत्ता को साफ करने में पानी असमर्थ है। आज तक लोग आत्मा को पानी आदि स्थूल चीज़ों से साफ करने का यत्न करते आ रहे हैं किन्तु वह साफ तो हुई नहीं, और ही मैली होती गई। पूरे 5000 वर्ष के समय चक्र में, 84 जन्म पूरे करते-करते आत्मा जब पूर्ण रूप से गंदी, मलिन एवं चमकविहीन हो जाती है तब उसका रचयिता परमपिता परमात्मा शिव ही उसको पुन: साफ, सुन्दर एवं चमकदार बनाते हैं। जब सभी मनुष्य आत्मायें, महात्माओं, धर्मात्माओं, ऋषियों-मुनियों के पास चक्कर लगाकर थक जाती हैं तब कलियुग के अंत में स्वयं परमपिता परमात्मा, पतित-पावन, गीता-ज्ञानदाता निराकार शिव आकर यह ज़िम्मेवारी लेते हैं। वे आत्मा को कैसे साफ करते हैं वो प्रक्रिया काफी ध्यान देने योग्य है।

सर्वप्रथम आत्मा को ज्ञान रूपी जल में, ब्रह्माकुमारी सेवाकेन्द्र रूपी बर्तन में सात दिन तक एक-एक घंटा भिगोकर रखते हैं। फिर लक्ष्य रूपी सोप लगाकर प्रैक्टिस का सटका लगाते हैं और परीक्षाओं रूपी ब्रश से रगड़ते हैं। फिर मुरली (ईश्वरीय महावाक्य) रूपी साफ पानी में उसे खंगालते हैं और व्यवहार व परमार्थ रूपी हाथों से निचोड़ते हैं। फिर पवित्रता रूपी टीनोपाल डालकर नई ब्राइटनेस का उजाला (नील) डालकर नई सफेदी लाते हैं। फिर नियम व मर्यादा के खंभों से, श्रीमत की मज़बूत रस्सी बांधकर ज्ञान-सूर्य की धूप में, उमंग-उत्साह की हवा में सूखने के लिए, संगठन के सहयोग की क्लिप लगाकर छोड़ देते हैं।

सूखने के बाद मनन-चिन्तन के पानी का स्प्रे कर, सच्चाई की मेज पर 'नथिंग न्यू' के आइरन से प्रेस कर उसे एकदम नया कर देते हैं। फिर कर्मातीत स्थिति के कवर में लपेटकर ब्रह्मा बाबा सुपर राकेट के साथ भेजकर परमधाम रूपी अविनाशी शो केस में लगा देते हैं। फिर सतयुगी नई दुनिया में, नई चमक के साथ भेज देते हैं जिसकी चमक 2500 वर्ष चलती है। सबसे बड़ी बात, धुलाई का कोई शुल्क नहीं

(शेष.. पृष्ठ 21 पर)

जब वज्रपात निष्क्रिय हो गया

• ब्रह्माकुमारी शान्ति, बांसड़ीह (बलिया)

बात 28 अगस्त, 2008 की है, सुबह 10.30 बजे छत पर पानी के टैंक की आपूर्ति बंद करने गई थी। वहीं सीढ़ी की छत से लगकर बांस के डंडे में शिव बाबा का झंडा लहराता रहता है। मैं नीचे आकर बैठी ही थी, अचानक इतना भयंकर विस्फोट हुआ कि धरती काँप गई, पूरा मकान हिल गया, लगा कि सब कुछ मेरे सिर पर गिरने वाला है। शरीर काँप गया और मुख से निकला, 'मेरे बाबा'। मैं सिर पकड़कर बैठ गई जैसे कि शरीर छूटने ही वाला हो। मस्तिष्क सुन्न हो गया, धड़कनें रुकने लगीं। इतने हृदयविदारक विस्फोट की आवाज़ मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। मेरी तंद्रा धीरे-धीरे भंग हुई, आँखें खुली तो देखा कि मकान जैसे का तैसा खड़ा है। एक ईंट भी नीचे नहीं गिरी थी। उस समय मैं अकेली थी, बाबा ही सहारा थे, घर के सभी लोग बाहर गये हुए थे।

अचानक बाहर दरवाज़े पर कई लोग इकट्ठे हो गये, जोर-जोर से आवाज़ें आने लगीं। मैं हिम्मत करके दरवाज़े की तरफ गई। मेरी सांसें फूल रही थी मानो लंबी दूरी तय करके आ रही हूँ। दरवाज़े पर खड़े लोग मुझे आश्चर्य से देखने लगे। 'क्या हुआ, आप ठीक तो हैं' – एक साथ आश्चर्य भरी कई आवाज़ें मुझे प्रश्नवाचक निगाहों से देखने लगी। सब अंदर आ गये, कुछ छत की ओर दौड़े। गाँव के सभी लोग देखने के लिए उमड़ पड़े कि क्या हुआ है।

चारों तरफ हलचल मची थी क्योंकि मेरे घर पर आकाशीय बिजली गिरी थी अर्थात् वज्रपात हुआ था। धीरे-धीरे मेरे होश-हवास सामान्य हुए तो मैं भी छत की तरफ बढ़ी। सबने आश्चर्य से देखा। वज्रपात इतना भयंकर था कि इसका अनुभव चार किलोमीटर की परिधि में किया गया परन्तु उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह थी कि इतना भयंकर वज्रपात शिव बाबा के झंडे के द्वारा रोक लिया गया था। बांस के आधे डंडे के ऊपरी हिस्से का चिथड़ा उड़ गया था और नीचे का हिस्सा काला पड़ गया था। सीढ़ी की दीवार में लगा बिजली का वायरिंग एवं स्विच बोर्ड ब्लास्ट कर गया था। नीचे मेन स्विच का कटआउट दूर जा गिरा था। दो पंखे भी जल गये थे। मकान को और मुझे कोई क्षति नहीं हुई थी जबकि अगल-बगल के कुछ लोग चोटिल हुए थे, कुछ दूरी पर एक वृद्ध की मौत भी हुई थी। मकान सहित मुझे सुरक्षित देख सभी अवाक् थे। सबने कहा, प्रभु की लीला! जाको राखे साँइयां...।

प्रत्यक्षदर्शियों ने बताया कि ऊपर दक्षिण की तरफ से एक डिब्बे (cartoon) जैसी चीज़ तेज़ी से आई, जो आग के गोले के रूप में हमारी ही छत की तरफ लपकी और तेजी से बाबा के झंडे से टकराकर आग के बुरादे के रूप में चारों तरफ फैल गई थी। दिन-भर लोगों की भीड़ आती रही क्योंकि अफवाह फैल गई थी कि छत गिर गई है लेकिन सब कुछ सही-सलामत देखकर चकित हो वापस चले जाते थे। सबने यही कहा, ईश्वर की लीला तो वही जाने। मेरे दिल ने बाबा को बार-बार शुक्रिया किया कि बाबा ने मुझे जिन्दा दफन होने से बचा लिया और पुरुषार्थ करने के लिए कुछ और साँसें उपहार में दे दी। धन्यवाद बाबा! आपको कोटिश: धन्यवाद!

❖

आत्मा को उजला .. पृष्ठ 20 का शेष

लेते। इस धुलाई की विशेषता यह है कि आत्मा रूपी कपड़ा कितना ही गंदा व दाग-धब्बों वाला क्यों न हो, उस पर कोई भी दाग-धब्बा रह नहीं जाता। इसलिए ही परमात्मा सर्वमहान व सर्वश्रेष्ठ सुधारक हैं। संसार सागर में कितना भी विकारों का प्रभाव हो, आत्माओं पर ग्रहचारी हो व कालिमा हो, प्रकृति का प्रकोप हो पर परमात्मा का कार्य निर्विघ्न चलता रहता है। उन पर किसी का भी, किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। वे हमेशा परिस्थिति से साक्षी व उपराम ही रहते हैं। वे संसार में आते तो हैं पर संसार का लेपक्षेप उन पर ज़रा भी नहीं लगता है। ❖

संगठन की दुश्मन : ईर्ष्या

• ब्रह्माकुमार दिनेश, हाथरस

जो कुछ नहीं कर सकता वह ईर्ष्या तो कर ही सकता है। जैसे कामाग्नि, क्रोधाग्नि, तृष्णाग्नि घातक हैं ऐसे ही ईर्ष्या की अग्नि में जलता हुआ मानव भी दूसरों के पतन के बारे में ही सोचता है। विरले ही होते हैं जो इस अग्नि में कभी नहीं जले होते। इस अग्नि में जलता हुआ व्यक्ति तो चलता-फिरता मुर्दा ही होता है जिससे केवल दुर्गंध ही आती है या उस अंधियारे की आग (जाड़ों में गोबर के उपलों को जलाकर ठंडक मिटाने का कार्य लिया जाता है) की तरह है जो बुझी नज़र आती है लेकिन राख के ढेर में चिंगारी लिये रहती है और थोड़ा-सा सहयोग पाकर फिर से भीषण अग्नि का रूप ले लेती है। ईर्ष्यालु व्यक्ति खुद भी जलता और दूसरों को भी जलाता है।

जहाँ ईर्ष्या होती है वहाँ इसकी पूर्ति न हो पाने पर नफरत, द्वेष इत्यादि सहेलियाँ भी साथ में आती हैं। वह दूसरे को हानि पहुँचाने के नाम पर अपना ही गला घोंट रहा होता है। इससे उसके अभिमान की संतुष्टि हो रही होती है ठीक उस गौरैया की तरह जिसे एक दिन अपने घोंसले के पास दर्पण में अपनी शक्ल दिखाई दी। उसे लगा कि कोई दूसरी मोटी गौरैया उसके पीछे से उसी के घोंसले में आकर रहती है। उसने शीशे पर अपनी चोंच से प्रहार किया लेकिन उधर से भी वार उसी गति से हुआ। होता यही है, जब ईर्ष्यालु व्यक्ति किसी को नीचा दिखाने की कोशिश करता है तो उसे उतना ही नीचा देखना पड़ता है। अब गौरैया खूब जोर-जोर से प्रहार करने लगी। शीशे का तो कुछ बिगड़ा नहीं लेकिन गौरैया की चोंच से खून निकलने लगा। उसने देखा कि सामने वाली गौरैया की चोंच से भी खून निकल रहा है, उसे थोड़ी संतुष्टि हुई। वह और ज़ोर से प्रहार करने लगी कि अब तो इस पर विजय पाकर ही रहूँगी। बार-बार प्रहार करने से वह पस्त हो गई और निढाल होकर लुढ़क गई। उसने देखा कि सामने वाली गौरैया भी निढाल होकर लुढ़क रही है। उसके मुख पर मुस्कान आ गई।

ईर्ष्या के वशीभूत मानव इस भ्रम में रहता है कि वह दूसरे को नुकसान पहुँचा रहा है लेकिन वास्तव में वह अपनी ही जड़ें खोद रहा होता है। मान लो, दूसरे को नुकसान पहुँच भी गया तो भी तो वह अनादि रूप में आपका ही आत्मिक भाई था आखिर नुकसान आपको ही तो हुआ।

ईर्ष्या जिस संगठन को पकड़ ले उसे अधमरा और कभी-कभी खत्म करके ही छोड़ती है। ईर्ष्या के अलग-अलग रूप हो सकते हैं, आइये, कुछेक पर विचार करें –

कामजनित ईर्ष्या – शरीर के भान, स्त्री-पुरुष के भान के कारण यह प्रथम महावैरी काम विकार, पतन की गर्त में गिरा देता है। जब तक इस विकार पर आंतरिक रूप से विजय नहीं पाई है, केवल दिखावे के लिए आडंबर किया जा रहा है तो अपने ही साथी, सहकर्मी, संगी, मित्रों आदि स्त्री-पुरुषों को युगल रूप में देखकर या साथी रूप में हँसते-बहलते, खेलते-खाते देखकर दबी हुई कुंठाओं की पूर्ति न हो पाने के कारण ईर्ष्या की डाह पैदा हो जाती है। ऐसे में वह कामना की पूर्ति करने के लिए अथवा बचाव के लिए हवाला देगा उन दूसरों का कि वे भी तो ऐसे कर रहे हैं या सभी ऐसा कर रहे हैं इत्यादि। कामजनित कामना ही उकसाती है कि दूसरा कर रहा है तो मैं भी क्यों न करूँ? सब ही तो ऐसे कर रहे हैं। सारा संसार ही तो ऐसा है तो मैं क्यों नहीं? यह दिखावे का पुरुषार्थ आंतरिक परिवर्तन नहीं होने देता। इसलिए, कई बार, अध्यात्म का चोगा पहना हुआ व्यक्ति भी इस कामाग्नि की ईर्ष्या में सुलगता रहता है। और यदि दृष्टिकोण ही खराब हो चुका हो, नज़रों पर काम

का चश्मा चढ़ चुका हो तो अन्य भी हर समय वैसे ही नज़र आयेंगे। यदि मन से स्वत: परिवर्तन नहीं है, दिखावा मात्र है तो परीक्षा आने पर मार्ग से फिसलने में देरी नहीं लगती। रामायण की सूर्पनखा भी इसी कामजनित ईर्ष्या का प्रतीक दिखायी गई है, वह देखना नहीं चाहती थी कि उसके पसंद के राम के साथ कोई अन्य स्त्री भी रहे।

अब काम की कामना की भी क्या ईर्ष्या? आप देखिये, मल, मूत्र, कफ, पित्त, चर्बी से भरे हुए और बाहर से विभिन्न प्रकार की सजावट के प्रसाधनों से लिपे-पुते, मुमताज महल या राजकुमार बने हुए शरीरों के लिए कितने न रक्तपात, खून-खराबे हुए, फिर भी वे शरीर कीट-पतंगों की तरह मिट्टी में मिल गये या मिला दिये गये। हाल की रिपोर्ट के अनुसार लगभग 2 करोड़ 89 लाख मुक़द्दमे भारतवर्ष के विभिन्न न्यायालयों में अपनी सुनवाई और फैसले का इंतज़ार कर रहे हैं और ये पंक्तियाँ आपके पास पहुँचते-पहुँचते सैकड़ों और जुड़ चुके होंगे। इनमें से डेढ़ करोड़ से अधिक मुक़द्दमे इसी कामजनित ईर्ष्या और उसके कारण होने वाले अपराधों से जुड़े हैं। क्या इस संख्या में एक अंक और जोड़ना समझदारी होगी? मल, मूत्र, कफ, पित्त की थैली से लिपटे, चिपटे या उसे नज़दीक रखे व्यक्ति से कैसी ईर्ष्या! वह तो रहम का पात्र है। अव्यक्त बापदादा ने भी कहा है – **कोई को कुएँ में गिरते देखकर खुद गिरना क्या समझदारी है!**

लोभजनित ईर्ष्या – जहाँ लाभ बढ़ता है वहाँ लोभ भी बढ़ता जाता है। व्यक्ति देखता है कि धन वाले को ही सब पूछते हैं, धन की महिमा अपरंपार है, सब इसी अंधी दौड़ में दौड़ रहे हैं तो वह भी दूसरों के साथ ईर्ष्याजनित प्रतिस्पर्धा करने लग पड़ता है और सोचता है, जब उसके पास यह-यह है तो मेरे पास इन चीज़ों की कमी क्यों? ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरों को खाते-कमाते देखता है तो वह भी येन-केन प्रकारेण भौतिक संपन्नता को बढ़ाना चाहता है। अधिक के लोभ में वह दिन-रात एक करके भी दूसरों से धनिक बनना चाहता है। हम क्या दिखायेंगे, इतिहास दिखाता है कि कितने ऊँटों, घोड़ों, रथों में भरकर हीरे, मोती, सोना, चाँदी भारत पर आक्रमण करने वाले लूट कर ले गये। हुआ क्या? वो धरनी की संपदा को एक स्थान से ढोकर आखिर दूसरे स्थान पर ही तो ले गये। चींटियाँ भी खाद्य सामग्री को ढो-ढोकर अपने घरों में पहुँचाती हैं और खा-पीकर मिट्टी बना देती हैं। परंतु सोने, चाँदी को तो खाया भी नहीं जा सकता फिर भी लोगों ने दूसरों को सताकर, मारकर इसे ढोया, सीने से लगाकर रखा और यहीं वालों के लिए, इसी धरती पर छोड़कर चले गये।

क्रोधजनित ईर्ष्या नहीं होती लेकिन कामना की पूर्ति न हो पाने के कारण ईर्ष्या और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। यही हाल अहंकार का है। अहंकार की संतुष्टि न होने के कारण ईर्ष्या का जन्म होता है।

मोहजनित ईर्ष्या – यह मोह भी इंसान को बंदर बना देता है। मोह के बंदरपने में फँसा हुआ वह सिर्फ अपनी और जिनको अपना समझता है उनकी ही उन्नति के विषय में सोचता है। कई बार जिनसे स्नेह अथवा लगाव होता है, सिर्फ उसे ही सर्वोच्च सिंहासनारूढ़ होते अँखिया देखना चाहती हैं। कैकेयी की तरह वह येन-केन प्रकारेण, साम, दाम, दण्ड, भेद सभी शस्त्रों का प्रयोग करके दूसरे की उन्नति में बाधक बनना चाहता है। देगा वह अपनी प्रतिज्ञा या नियमों का हवाला लेकिन इन प्रतिज्ञाओं में ईर्ष्या की कुटिलता की भावना छिपी ही रहती है। जैसे चिंता की चिता जिंदा व्यक्ति को जलाकर राख कर देती है, ईर्ष्या की अग्नि केवल अग्नि नहीं दावानल है जिसकी तपत में अनेकों के जीवन और बड़े-बड़े संगठन भी निर्जीव बन जाते हैं।

अत: हे आत्मन्! अब छोड़ो रावण की भगिनी ईर्ष्या सूर्पनखा को, काटो इसके नाक, कान (मान, शान, दिखावा) लक्ष्मण (लक्ष्य से मन को लगाने वाला) बनकर। तभी समाप्त

होगी आसुरी तत्वों की सारी लंका। झूठी प्रतिस्पर्धा में पड़कर अपना कीमती समय मत बर्बाद करो। बुद्धि और बल का समय पर उपयोग करो। प्रसंग आता है, हनुमान जब सीता की खोज में सागर के ऊपर से जा रहे थे तो सुरसा नामक नागों की माता ने परीक्षा लेने के लिए उन्हें रोका। परंतु हनुमान ने अपनी बुद्धि का प्रयोग कर अपने को मुक्त कर लिया। हे हनुमान! तुम्हें तो संसार रूपी लंका से अनेकों रावणों के चंगुल में फँसी अनेकों सीताओं को ढूँढना है, समय कम है। **इस संसार में रूपवान, धनवान, बलवान, पहलवान, गुणवान अनेकों प्रतिभावान हैं, कहीं कोई कमी नहीं है। कहावत है 'मल्लन कूं मल्ल घनेरे, घर नायें तो बाहर बहुतेरे' के उदाहरण को सामने रख इस गंदी प्रतिस्पर्धा से न्यारे बनो। आखिर किस-किस से प्रतिस्पर्धा करोगे? तुम इस दुनिया में विशेष हो, अकेले हो, तुम्हारे अंगूठे के निशान वाला भी दूसरा कोई इस दुनिया में नहीं है। किसी की नैसर्गिक विशेषताओं और व्यक्तिगत योग्यताओं से ईर्ष्या करने से कुछ हासिल होने वाला नहीं है। प्रयास यह करो कि अपने अंदर जो योग्यतायें हैं उन्हें उभारो और उन्हें कलियुग से सतयुग निर्माण के सर्वोच्च कल्याणकारी कार्य के लिए रचे गये इस रुद्र गीता ज्ञान यज्ञ में लगा दो, भला ही भला होगा।** ❖

निराकारी, निर्विकारी, निरहंकारी बनो

ब्रह्माकुमारी अरुणा, शाहपुर

जिन दिनों महात्मा बुद्ध अपनी तपस्या का प्रवाह चारों ओर फैला रहे थे, उन दिनों एक युवा ब्रह्मचारी बहुत भ्रमण कर, कई ग्रंथों का अध्ययन कर स्वदेश लौटा। वह यह शेखी बघारने लगा कि उसके समान कोई और ज्ञानी नहीं है। संपर्क में आने वाले व्यक्तियों से वह यही प्रश्न पूछता – क्या मुझसे बढ़कर कोई और ज्ञानी देखा है आपने?

बात भगवान बुद्ध के कानों में पहुँची। वे ब्राह्मण वेश में उसके पास गये।

युवा ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया – 'तुम कौन हो ब्राह्मण?'

'अपनी इंद्रियों और मन पर पूर्ण अधिकार रखने वाला एक तुच्छ मनुष्य हूँ' – बुद्धदेव ने जवाब दिया।

'भली-भाँति स्पष्ट करो ब्राह्मण, मुझे कुछ समझ में नहीं आया' – वह अहंकारी बोला।

बुद्धदेव बोले – 'जिस तरह कुम्हार घड़े बनाता है, नाविक नौकाएँ चलाता है, धनुर्धारी बाण चलाता है, गायक गीत गाता है, वादक वाद्य बजाता है और विद्वान वाद-विवाद में भाग लेता है, उसी तरह ज्ञानी स्वयं पर शासन करता है।' 'ज्ञानी पुरुष भला स्वयं पर कैसे शासन करता है?' – ब्रह्मचारी ने पुन: प्रश्न किया।

'लोगों द्वारा स्तुति-सुमनों की वर्षा किये जाने पर अथवा निंदा के अंगार बरसाए जाने पर भी ज्ञानी पुरुष का मन एकरस ही रहता है। उसका मन सदाचार, दया और विश्व-प्रेम पर ही केन्द्रित रहता है, यही वजह है कि उसके चित्त-सागर में सदा शांति की धारा बहती रहती है' – बुद्धदेव ने कहा।

उस ब्रह्मचारी ने जब स्वयं के अशान्त चित्त के बारे में सोचा तो उसे आत्मग्लानि हुई क्योंकि अहंकारी को शान्ति कहाँ? वह बुद्धदेव के चरणों पर गिर पड़ा, बोला – 'स्वामी, मैं अपने को ज्ञानी समझता था किंतु आज मैंने जाना कि मुझे अभी बहुत ज्ञान सीखना है।' **प्यारे शिव बाबा भी हम बच्चों को कहते हैं, बच्चे, जब तक जीना है, तब तक सीखना है। सीखने की भावना व्यक्ति को नम्र बनाती है। 'मैं बहुत ज्ञानी हूँ' – यह भावना अहंकार से भर देती है। अहंकार ही सर्व दुखों का मूल है। अहंकारी का पतन निश्चित है। इसलिए प्यारे बाबा ने मंत्र दिया है – मनसा में निराकारी, वाणी में निरंहकारी और कर्म में निर्विकारी बनो।** ❖

इस तरह मिला मुझे सर्वश्रेष्ठ गुरु

• ब्रह्माकुमार लोकपाल सिंह परमार, टीकमगढ़ (म.प्र.)

मेरा जन्म मध्य प्रदेश के जिला टीकमगढ़ के एक छोटे-से गाँव में सन् 1975 में हुआ। पिताजी पुलिस विभाग में थे। उनकी तामसिक प्रवृत्तियों के कारण बचपन से ही मुझमें भी शिकार करने तथा आसुरी खान-पान के संस्कार पड़ गये। इन सब कर्मों को करने के बाद आत्मा ग्लानि से भर जाती थी। अंदर से आवाज़ आती थी कि ये सब कर्म तुम्हारे अनुकूल नहीं हैं। पन्द्रह वर्ष की आयु में मन में शक्ति जागृत हुई जिससे जीवन अशुद्ध खान-पान से मुक्त हो गया।

भगवान के साक्षात्कार की लगन

बचपन में मैं अपने शरीर को ध्यान से देखता था और अपने से ही पूछता था कि मैं कौन हूँ परंतु उत्तर नहीं मिलता था। फिर मुझे लगन लग गई कि चाहे कुछ भी हो जाये और चाहे एक सेकण्ड के लिये ही सही, मुझे भगवान का साक्षात्कार ज़रूर करना है। उस समय तो सभी देवी-देवताओं को भगवान मानता था इसलिए मैंने गायत्री माता को अपनी इष्ट देवी मान लिया और अटूट निश्चय के साथ उनकी उपासना शुरू कर दी। पहले-पहले तो सुबह-शाम, दो-दो घण्टे जाप किया परंतु फिर लगा कि इतने से भगवान प्रसन्न नहीं होंगे तो फिर चलते-फिरते भी माला जपनी शुरू कर दी। कहीं भी जाता था तो माला को जेब में डालकर जाप करता रहता था। घर वालों को इस तरह की अति भक्ति देखकर डर लगा कि कहीं यह साधु न बन जाये, उन्होंने डाँटना शुरू कर दिया। मैं रात को मच्छरदानी लगाकर लेट जाता था, घर वाले सोचते थे कि सो रहा है। सबके सोने के बाद रातभर जागकर गायत्री मंत्र जाप करता था।

गायत्री माता के दर्शन हुए

पाँच करोड़ की संख्या पूरी होते ही जब एक शाम गायत्री माँ के प्यार में डूबा था तो अचानक एक 9-10 साल की कन्या, लाल वस्त्र पहने, सिर पर मुकुट लगाए और अलौकिक आकर्षण तथा अलौकिक मुस्कान लिए मेरे सामने पाँच सेकण्ड तक खड़ी रही और फिर अदृश्य हो गई। मेरे आँसू छलक पड़े। उस कन्या की सूरत, गायत्री की उस तस्वीर से, जो मैंने आराधना के लिए रखी थी, हूबहू मिलती थी। मुझे श्रेष्ठ गुरु की तलाश तो थी ही क्योंकि सुना था कि गुरु बिना सद्गति नहीं हो सकती अत: मैंने दोनों आँखें बंद करके, हाथ जोड़कर कहा – हे गायत्री माता, यदि सच्चे मन से आपकी भक्ति की है तो मुझे संसार के सर्वश्रेष्ठ गुरु से मिलवा दीजिए।

माता ने कहा, वहीं जाओ

उसी दिन शाम को ड्रामा की भावी कहें या भक्ति का फल कहें, हमारे स्कूल में प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की ओर से आध्यात्मिक चित्र प्रदर्शनी लगाई गई। मेरे बड़े भाई को उसका निमंत्रण मिला परंतु धर्म में रुचि न होने के कारण उन्होंने वह निमंत्रण-पत्र मुझे दे दिया। मैं पिताजी के लिए शराब लाने स्कूल के रास्ते जा रहा था, मन में सोचा कि जाकर प्रदर्शनी भी देख लेता हूँ, निमंत्रण-पत्र तो साथ था ही। जैसे ही चित्रों के सामने पहुँचा तो एक-एक चित्र को देखकर लगा कि इन सभी चित्रों को पहले भी कहीं देख चुका हूँ जबकि इस जीवन में पहली बार ही देख रहा था। मैंने सिर्फ आत्मा और परमात्मा, इन दो चित्रों पर ही समझा क्योंकि डर था कि कहीं इस धर्म को अपनाने से गायत्री माता नाराज़ न हो जायें। समझाने वाले भाई को मैंने कहा कि अभी मुझे जल्दी जाना है, कल आकर समझूँगा जबकि हकीकत यह थी कि मैं वहाँ से छूटना चाहता था। सोचा कि कल

से नहीं जाऊँगा परंतु **उसी रात गायत्री माता स्वप्न में आई और कहा कि वहाँ जाओ, सर्वश्रेष्ठ गुरु वहीं मिलेगा।**

बुराइयाँ विदाई ले गईं

दूसरे दिन फिर गया, ज्ञान को समझा पर मेरी आँखें तो गुरु को तलाश रही थी। कोर्स पूरा होने पर भाई ने मुझे बताया कि कल से आपको मुरली सुनाई जायेगी। मैंने सोचा कि मुरली बजाने वाला ही कोई गुरु होगा परंतु वहाँ तो एक सफेद वस्त्रधारी बहन बैठी थी। उन्होंने कोई काठ की मुरली बजाई नहीं बल्कि ज्ञान की बातें सुनाई और सेवाकेन्द्र पर आने का निमंत्रण दिया। अगली सुबह पाँच बजे उठा और बिना स्नान किये ही साइकिल लेकर चला गया। सतगुरुवार का दिन था, प्यारे बाबा को भोग लग रहा था। मैं भी ध्यानमग्न बैठी बहन के सामने बैठ गया। थोड़ी देर के बाद बहन जी की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी और वह काफी देर तक मुझे देखती रही। मैं डर गया कि जरूर मुझसे कोई गलती हो गई है जो यह बहन मुझे घूर-घूर कर देख रही है। ज़रूर यह समझ गई है कि मैं स्नान किये बिना आ गया हूँ। मैंने सोचा कि बाद में जरूर मुझे डाँटेगी परंतु डाँटना तो दूर उसने स्नेहयुक्त बोल के साथ मुझे टोली (प्रसाद) दिया। बाद में मुझे पता चला कि वह तो रूहानी दृष्टि दे रही थी। इस प्रकार, इन पवित्र बहनों द्वारा विश्व परिवर्तन का कार्य कराने वाले परमात्मा शिव मुझे सच्चे गुरु के रूप में मिल गये।

कई बुराइयाँ तो भक्ति करते-करते हट गई थी बाकी बची हुई ज्ञान में आने के बाद विदाई ले गईं। ज्ञान में आने के बाद पिताजी के क्रोध का बहुत सामना करना पड़ा। शराब के कारण उनके फेफड़े खराब हो गये थे अत: कुछ समय पश्चात् उन्होंने शरीर छोड़ दिया। अब तो घर में गीता पाठशाला चलती है। शुरू-शुरू में गाँव वालों ने काफी विरोध किया, आश्रम में ताला तक लगाने आ गये थे मगर **'एक बल एक भरोसे' के आधार पर सभी बातें पहाड़ से राई बन गईं।**

अब तो दिल करता है कि इस संगमयुग की शेष घड़ियों का एक-एक सेकण्ड सफल कर लें और भगवान को अपने श्रेष्ठ जीवन के द्वारा संसार में प्रत्यक्ष कर दें। ❖

व्यसन - मौत की शहज़ादी.. पृष्ठ 19 का शेष

एक पात्र रख दीजिए और अपने अध्यापकगण को कह दीजिए कि वे हर मास होने वाले व्यसन और फैशन के खर्च को केवल 6 मास तक इस पात्र में एकत्रित करें। निश्चित है कि 6 मास में 15 हजार रुपये आसानी से मिल जाएंगे। लेकिन इसके लिए आपका व्यक्तित्व बड़ा ऊँचा और प्रेरक होना चाहिए। वह सोच में पड़ गया। बोला, बहन जी, बात तो बहुत ही सच्ची और चिन्तन योग्य है। आपने हमारी आंखें खोल दीं। मैंने उन्हें बताया, प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के बहुत से भाई-बहनों ने व्यसन और फैशन में व्यर्थ जाने वाले धन को बचाकर बड़े-बड़े समाज कल्याण के कार्य किए हैं। जब इनसे पूछा जाता है कि उन्होंने कैसे नशे से मुक्ति पाई तो दो बातें विशेष रूप से बताते हैं, एक तो स्वयं की दृढ़ता और दूसरी, परमात्मा की मदद। वे कहते हैं कि राजयोग के अभ्यास से हमारी इच्छा शक्ति दृढ़ हो गई है, एक बार निर्णय लेकर हमने उसे पूरा करके ही छोड़ा और परमात्मा पिता से मन की तार जुट जाने से उनसे ऐसी दिव्य शक्ति प्राप्त हुई कि हम भूल गए कि हम कभी नशा भी करते थे। हमारी शुभभावना है कि ये दोनों बातें हर व्यसनी में आ जाएँ और भारत का हर व्यसन-रोगी सच्चा राजयोगी बन जाए। ❖

गतांक से आगे..

रिश्तों की गरिमा – एक निरीक्षण

• डॉ. अजीत सिंह राणा, रोहतक

भारत के गाँवों के पचास साल पहले के समय पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि आज की तुलना में उस समय के लोगों में नैतिक मूल्य अधिक थे। परन्तु अनेक समाज सुधारकों के प्रयासों के बावजूद अनैतिकता के बढ़ते प्रकोप को हम रोक नहीं सके। आज हम देख रहे हैं कि गाँवों में लोगों के पास अपनी खेती की ज़मीनों का आकार बहुत छोटा हो गया है या ज़मीनें नहीं रही हैं। दूसरी प्रकार के रोज़गार हैं नहीं। सरकारी ग्रामीण योजना के अंतर्गत सरकार जो रोज़गार देती है उसे कुछ लोग अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। अच्छी शराब पीना, टी.वी. देखना, अच्छे वस्त्र पहनना, सारा दिन ताश खेलना तथा कार्य न करना आदि जीवन शैली अपनाई हुई है। इसका परिणाम कर्ज़े में ग्रस्त होना है। कर्ज़ा और चरित्रहीनता दोनों व्यक्ति को ग़रीब, लाचार, बेबस व असहाय बना देते हैं। इसके बड़े गंभीर परिणाम सामने आये हैं।

'भारत में युवा स्थिति और ज़रूरतें' विषय को लेकर किये गये एक सर्वेक्षण के परिणाम में पाया गया है कि 20 प्रतिशत ग्रामीण युवक शादी से पहले सैक्स करते हैं तथा 4 प्रतिशत ग्रामीण युवतियाँ विवाह पूर्व सैक्स करती हैं। इस अध्ययन में यह भी व्यक्त किया गया है कि 6 प्रतिशत युवकों और 32 प्रतिशत महिलाओं को सैक्स के लिए मजबूर किया गया। (भास्कर, दिनांक 28.02.2009)

कुछ गाँवों के लोगों से मौखिक सूचनायें प्राप्त हुई हैं कि उनके गाँव में कम-से-कम 8-10 परिवार ऐसे हैं जहाँ औरतों से धंधा अर्थात् वेश्यावृत्ति करवाई जाती है। सूचना की जाँच करने पर यह सही पाया गया। फिर कुछ और गाँवों के लोगों से भी संपर्क किया गया तथा पाया गया कि खुले आम भी यह धंधा पनप रहा है। कहावत है कि खरबूज़े को देख खरबूज़ा रंग बदलता है। रिश्तों की यह अपवित्रता पति-पत्नी के रिश्ते व संबंध पर ज़हरीला प्रभाव छोड़ती है जिससे उनमें परस्पर अविश्वास, दुर्भावना व कड़वाहट उत्पन्न होती है। इस कारण पति-पत्नी में निरंतर लड़ाई-झगड़े, दुख, तनाव और तलाक तक की स्थिति उत्पन्न होती है। इन सबका बच्चों के पालन-पोषण, उनकी शिक्षा, उनके व्यक्तित्व के विकास पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जब परिवार स्वस्थ नहीं है तो समाज भी स्वस्थ नहीं होगा। एक अस्वस्थ समाज एक श्रेष्ठ तथा शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकता। इसी कारण भारत जो कभी समृद्ध व शक्तिशाली राष्ट्र होता था, आज विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक, संगठनात्मक समस्याओं से ग्रसित है।

कुछ सुझाव –

भारत को पुन: पावन बनाने या अधिक पतित बनने से रोकने के कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय निम्न प्रकार हैं –

1. स्त्री-पुरुष के मध्य रिश्तों का पवित्रता के आधार पर पुन: या नये सिरे से नामांकन किया जाये। इसके लिए विभिन्न समाजशास्त्रियों, धार्मिक गुरुओं तथा उच्च नैतिक मूल्य वाले राजनेताओं की कमेटी का गठन करके इन रिश्तों को पवित्रता वाले नये नाम दिये जायें।

2. लड़के व लड़कियों के लिए शादी से पहले कम से कम एक वर्ष की गहन आध्यात्मिक शिक्षा अनिवार्य की जाये जिसमें रिश्तों की पवित्रता के महत्त्व पर विशेष बल हो। इसके लिए ऐसी आध्यात्मिक संस्थाओं से संबंध स्थापित किया जाये जो केवल नैतिक, आध्यात्मिक तथा आत्मा-परमात्मा की ही शिक्षा देती हों तथा जो सारे भारतवर्ष में फैली हों। ऐसी

संस्थाओं का चयन उपरोक्त कमेटी द्वारा करवाया जा सकता है।

3. भारत में पहले सुख, शान्ति व समृद्धि तीनों भरपूर मात्रा में थे, उस काल को स्वर्ग या सतयुग कहा जा सकता है। बाइबिल में वर्णित है कि क्राइस्ट से तीन हज़ार वर्ष पहले भारत स्वर्ग था। यह भी कहा जाता है कि भारत में दूध व घी की नदियाँ बहती थीं। ऐसा समृद्ध भारत समय के साथ-साथ इतना गरीब कैसे बन गया? इसका मूल कारण मूल्यों की, चरित्र की, कर्मठता और कर्त्तव्यपरायणता की गरीबी है। सार रूप में हम कह सकते हैं कि यह स्लोगन लोकप्रिय बनाया जाये कि **'अपवित्रता ही गरीबी का मूल कारण है'** क्योंकि, जो समष्टि स्तर पर है वही व्यष्टि स्तर पर भी घटित होगा।

4. स्कूलों में शिक्षा के साथ-साथ नैतिक शिक्षा न केवल अनिवार्य की जाये बल्कि इसके व्यवहारिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया जाये। नैतिकता ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों व उनके माता-पिता को सम्मानित किया जाये।

5. पवित्रता के महत्त्व को अंकित व स्पष्ट करने के लिए पवित्रता व अपवित्रता के लाभ व हानि का तुलनात्मक अध्ययन करवाया जाये। ऐसे विषयों पर स्कूलों, कालेजों व विश्वविद्यालयों में वाद-विवाद, भाषण प्रतियोगिता आदि आयोजित करवाई जायें।

निष्कर्ष :

बहुत देर हो चुकी है। बहुत पानी बह निकला है। परन्तु कभी न करने से देर में करना भी अच्छा है। यह बहुत आवश्यक है कि अब भी समाज के कर्णधार इस दिशा में कदम उठायें तथा स्त्री-पुरुष के बिगड़ते संबंधों व वेश्यावृत्ति की बढ़ती प्रवृत्ति को रोकने के लिए अपवित्रता पर आधारित रिश्तों को पवित्र नामों से प्रतिस्थापित करें तथा भारतीय समाज को और नर्क में जाने से बचायें। ऐसा करने पर ही भारत एक समर्थ, सक्षम तथा समृद्ध राष्ट्र बन सकेगा।

❖

सुख का सच्चा धाम

अमृतलाल मदान, कैथल

आबू पर्वत आय के, हुआ सतत् आभास
मृग की कस्तूरी रही, सदा ही उसके पास।
भौतिकता का भूत का ऐसा चढ़ा जुनून
सुख-सुविधायें जोड़ ली, खोया दिली सुकून।
देह से हटकर है बसा सुख का सच्चा धाम
देह के पीछे आत्मा उसके बिन तन चाम।
मैंने जाना कौन मैं, कौन है सच्चा मीत
जाना तो निर्भय हुआ पहले था भयभीत।
ज्योतिर्बिन्दु ने किया ऐसा अजब कमाल
परिवर्तन के हेतु यूँ सिंधु दिया उछाल।
निर्मल मुरली से धुला मन का कचरा मैल
अब न फिर जुत पायेगा जग-कोल्हू में बैल।
धन्य-धन्य हो बाप शिव, धन्य हो दूत महान
मुझ अंधे को भी दिया दिव्य दृष्टि का दान।
शब्द शब्द अब सोचकर चलना पथ विशेष
देते रहना हर कदम बाबा तुम निर्देश।
मैं भी माध्यम बन सकूँ ऐसी तरंगे भेज
जाग गया, न सोऊँगा, भोगों की अब सेज।

अमूल्य आभूषण हर्षितमुखता

• ब्रह्माकुमारी पुष्पा, पांडव भवन (दिल्ली)

कहा गया है, 'यदि आप हँसते हैं तो सारा जग आपके साथ हँसता है; यदि आप रोते हैं तो आप अकेले होते हैं।' हर्षितमुखता एक दिव्य गुण है, आनन्दमय स्थिति और मन की प्रसन्नता की छवि है, संतुष्टता की छाप है। किसी भी हास्यदायिनी घटना पर हँस देना कुछ और बात है परंतु अगर इसे गुण के रूप में विकसित करें तो सदा एकरस स्थिति में रह सकते हैं। देवताओं के मुख पर सदा हर्ष अर्थात् खुशी दिखाई देती है। उन खुश चेहरों को देखकर भक्त भी मगन हो जाते हैं। क्या क्रोध की मुद्रा में देवताओं की मूर्तियों को कोई देखना पसंद करेंगे? नहीं ना। हर्षित रहना स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक है। हँसते रहने से खून बढ़ता है जबकि उदास एवं दुखी रहने से खून जलता है। हर्षितमुखता एक अच्छा व्यायाम है। अगर कोई तनाव से ग्रस्त व्यक्ति मनोवैज्ञानिक के पास जाता है तो डॉक्टर पूछता है, आपको हँसी आती है? कितने दिन हो गए हँसे? अत: हँसना एक औषधि भी है।

हम जितने हलके होंगे उतने खुश दिखाई देंगे। मन पर किसी प्रकार का बोझ होगा तो हम उस बोझ के नीचे दबे-दबे रहेंगे। अगर हम सोचें कि भगवान मेरे साथ है, वो ही कराने वाला है तो मन पर बोझ नहीं रहेगा और संतुष्टता आती जायेगी। हर्षितमुख रहने के लिए चिंतन की धारा बदलनी ज़रूरी है। कई मनुष्य अपने अंदर अनेक गमों को छुपाये ऊपर से हर्षित दिखाई देते हैं क्योंकि वे सोचते हैं, हमारी गमगीन अवस्था औरों को भी उदास कर देगी परन्तु अन्दर एक बाहर दूसरा होना भी तो कम घातक नहीं।

कैसे छिन जाती है खुशी?

1. किसी भी प्रकार का संशय आ जाने से और मन में अभिमान आने से खुशी चली जाती है। दूसरों से मिलजुल कर रहने वाला सदा खुश रहता है।

2. बात-बात में नाराज़ हो जाना भी मन को प्रसन्न नहीं रहने देता क्योंकि ऐसे व्यक्ति का ध्यान सदैव अपने ही मान-अपमान की तरफ रहता है।

3. स्वास्थ्य का ठीक न रहना भी मनुष्य को चिंतित कर देता है।

कैसे मिले खुशी?

1. परमपिता परमात्मा को याद रखने से, उसके द्वारा दिये गये सुखों का चिंतन करने से व हर घड़ी उसका धन्यवाद करते रहने से हर्षितमुखता आती है। इससे मन फूल की तरह खिला रहता है, उसे देखकर अन्यों का मन भी खिल उठता है। खुशी सेवाकारी गुण है। इसकी सुगंध स्वत: ही फैल जाती है।

2. नकारात्मक एवं ज्यादा सोच का त्याग करें। लाल बहादुर शास्त्री जी से किसी ने पूछा, ज़हर क्या है? उन्होंने कहा, किसी भी चीज़ की अति करना ज़हर के समान है, अति में सोचना भी दुख का कारण है।

3. दृष्टिकोण बदलें – कड़वी घटनाएँ दिल में याद रहती हैं तो समय-समय पर दुख पैदा करती रहती हैं इसलिए बीती को भुला दें। कई हादसे शिक्षाप्रद होते हैं उनसे सीख लें।

4. अधिक कामनाएँ या इच्छाएँ न रखें – हम ही दूसरों की कामनाएँ पूरी नहीं कर पाते तो दूसरों से उम्मीद क्यों रखें? उस परमपिता से लगन लगाएँ जो सबकी इच्छाओं की पूर्ति करता है, जो सबको देने वाला दाता है।

5. अपनी तुलना दूसरों से न करें। देखना है तो दूसरों के गुण देखें और ग्रहण करें।

6. हम प्रतिदिन नये-नये लोगों के संपर्क में आते हैं और उनसे संबंध जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार, उस परमपिता परमात्मा से भी संबंध जोड़ें जो सुख के सागर हैं। परमात्मा पर समर्पित होने से प्रसन्नता आती है।

❖

आत्म-स्मृति में है समाधान

• ब्रह्माकुमार भगत सिंह गोयत, फरीदाबाद

दुर्घटनावश जब किसी मनुष्य की स्मृति चली जाती है तो उसकी सांसारिक उन्नति के द्वार बंद हो जाते हैं। उसे लाभ-हानि, यश-अपयश या ऊँच-नीच का कुछ भी अहसास नहीं रहता है। उसकी विस्मृति उसके आगे जैसे दीवार बनकर खड़ी हो जाती है।

लेकिन दुर्घटनाओं में हो जाने वाली विस्मृति तो उस बड़े से बड़ी भूल के सामने कुछ भी नहीं है, जो हर एक मानव आत्मा से हुई है। सूर्य, चंद्र और तारागण से भी पार, परमधाम से आई हुई अनोखी कलाकार आत्मा, जो अविनाशी है और अपना पार्ट पूरा होने पर जिसे वापिस घर भी लौटना है, सतयुग के आदि से पुनर्जन्म में आते-आते स्वयं को विनाशी देह मान बैठी है। जब कलाकार अपने को वस्त्र समझ लेता है तो उसका अपना अस्तित्व तो रहता ही नहीं। चैतन्य ज्योति, अविनाशी आत्मा आँखों से देखती रहती, कानों से सुनती और पैरों से यहाँ से वहाँ फिरती रहती और इतने भारी शरीर को ऐसे नचाती है जैसे प्लास्टिक का खिलौना हो और शरीर छोड़ने पर इतना तीव्र वेग से भागती है कि उसकी रफ़्तार का मुकाबला तेज़ से तेज़ राकेट भी नहीं कर सकता। यह अनोखी हस्ती इतनी तीक्ष्ण है कि एक सेकंड में, भारत में पुराने शरीर को छोड़ कर, अमेरिका में अगली माता के गर्भ में बने छोटे शरीर में प्रवेश हो सकती है। ऐसी विलक्षण और महान हस्ती, इस समय अपने आपको पूर्णरूपेण भुलाकर, मिट्टी, हवा, पानी आदि तत्वों की बनी, क्षण भर में विनष्ट हो जाने वाली देह मान बैठी है।

सारे विश्व में दु:खों की जो विकराल आँधी चल रही है उसका मूल कारण यह आत्म-विस्मृति की घोर अमावस्या ही है। मानव के दानव बनने का कारण भी स्वयं की विस्मृति ही है। देह को धारण करने वाली आत्मा अति कीमती है। इस अमूल्य सत्ता की रक्षा करने की नितांत आवश्यकता है। इसे काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इन पाँच भूतों ने कैद कर रखा है। अब प्रश्न उठता है कि आत्मा की रक्षा कौन करेगा? क्या शरीर? गीता में भगवान के महावाक्य हैं – **'हे अर्जुन! आत्मा ही अपना मित्र और आत्मा ही अपना शत्रु है।'**

आत्मा अपने अनादि स्वरूप और अपने प्राणनाथ परमात्मा शिव को भूल जाने से कौड़ी-तुल्य, बुद्धिहीन और धर्मभ्रष्ट-कर्मभ्रष्ट हो गई है। उसने आदिकाल के दैवी, पवित्र, स्नेहिल और निर्मल स्वभाव को जैसे विदाई दे दी है और उसके बदले आसुरी, अपवित्र, कठोर स्वभाव को आत्मसात् कर लिया है। आत्मा ने शैतान के आगे घुटने टेक दिये हैं या यों कहें कि प्यार के सागर, पवित्रता के सागर सर्वशक्तिमान परमात्मा की अविनाशी संतान आत्मा रूपी सीतायें अभी महावैरी और महाबली रावण (माया) की जेल (शोक वाटिका) में आकर फँस गई हैं।

सृष्टि चक्र के आदि में, पाँच हज़ार वर्ष पहले जो दैवी मानव सोलह कला संपूर्ण, संपूर्ण निर्विकारी, संपूर्ण अहिंसक थे, वे पुनर्जन्म लेते-लेते, चौरासी जन्मों के अंत में एकदम कलाहीन, संपूर्ण विकारी और संपूर्ण हिंसक बनकर आपस में जल-भुन रहे हैं। **ऐसी धुंधकारी और अति निराशाजनक परिस्थितियों में ऊँचे धाम में रहने वाला, रहमदिल, ज्ञान सागर, पतित पावन, मुक्ति-जीवन्मुक्ति दाता, त्रिकालज्ञ, त्रिलोकीनाथ, गुरुओं के परम गुरु, कालों के काल महाकाल, सदाशिव अपना पावन-ऊँचा ठाँव छोड़कर फिर से मूर्छित आत्माओं की इस माया नगरी में, अवतरित होकर पिछले 72 वर्षों से ज्ञान का डमरू बजाकर, कुंभकरण की आसुरी नींद में सोई हुई आत्माओं (रूहों) को जगा रहे हैं। ज्ञान-योग का घृत प्रतिदिन डाल-डालकर चैतन्य दीपकों को जगा रहे हैं। अब जागने की वेला है, जागिए और ईश्वरीय ज्ञान के संबंध में खोई हुई स्मरण शक्ति को पुन: प्राप्त कीजिए।**

❖